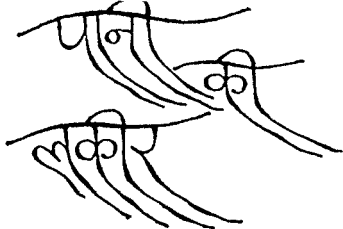




शिक्षा विभाग राजस्थान
के लिए

चिन्मय प्रकाशन
चौडा रास्ता, जयपुर-302003



सम्पादक
अमृता प्रीतम

शिक्षक दिवस के अवसर पर
शिक्षा विभाग राजस्थान बीकानेर
के लिए

प्रकाशक : चिन्मय प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर-302003
मुद्रक : श्री बालचन्द्र यन्त्रालय 'मानवाभ्रम' दुर्गापुरा रोड, जयपुर-30201
प्रथम संस्करण ; 1980
मूल्य 9-00 रुपये
आवरण : इमरोज

PANI KI LAKIR (Kavita)
Edited by : Amrita Preetam
Price : Rs. 9 00

शोर हम अपनी दावती मजों पर सजाते
पर एक दिन—
हम मछली के काटे की तरह

इस मजह की तरह भी उस पानी
नहीं हस्ताक्षर दिनों में दबे हुए लोगों की राहों
आज से कही ज्यादा, बक्त की प्यास की महाराज

रोप की ताकत खयाली की सफाई में
शोर दलील की हदता में होती है, सिर्फ
नहीं। शोर ताकत सिर्फ एक कला की ताकत
में दाज शामिल होता है।

मजसदी कायरी से मिरा विशाल
को अपना माध्यम बनाता है, वो
इन्तियार नहीं करता, बस पाल से ले
होता है, पानी के सीले से

खशाक, किली भी पूल
किली भी सीत के अम्तिन्ध का

के 24 वीं भाग
के दिनों

अनुक्रम

शशिशामा शर्मा	गमन के दायरे	1
	प्रयुक्त धृष्टता	2
ब्रजभूषण भट्ट	जिन्दगी : घ गारा	3
	ताम दादमी	3
सावर दहया	बाबू की नोक पर	4
	घपने ही नाम	5
	घाल वर्षोंपरांत एक संदर्भ	7
पुष्पलता कश्यप	स्वितिप्रज	8
	घपने उद्देश्य के लिए	01
	सुगिया	11
शिव 'मृदुल'	छोटे से बहा	13
शतुर कोठारी	सूकान	14
अमरसिंह पाण्डेय	महाभित्तिप्रमण	16
चैतराम शर्मा	क्यू में लग जाइये	18
मगरचन्द्र दवे	परिणति	20
	यह मेरा कसूर था	21
	विहम्बना	22
रामस्वरूप परेश	गजल	23

कृन्दनसिंह सजल	गजल	24
	विष पीकर पी लूँ गगा जल	24
नन्दकिशोर चतुर्वेदी	कुछ नहीं	26
	भिगुरो का शोर	27
श्रीनदन चतुर्वेदी	विनय	29
रमेश भयक	समाजवाद	31
प्रभात प्रेमी	तुम श्रीर मैं	32
सावित्री परमार	हम हुए तलाश से..	33
	कौन किसे कहे यहा ...	34
	बतियाते धूप-छाव .	35
भानद कुरेशी	कविता	36
दीपचन्द सुधार	उभरते चित्र	37
	राहगीर	38
दुष्यन्त व्यास	जाल	40
अब्दुल मलिक खान	लूट लिया मौसम ने	41
	कुछ देर के लिए	41
नमोनाथ अवस्थी	पाच साल	43
	तुम्ही से पूछना हू	43
बाबू 'हसमुख'	कविता	45
विक्रमसिंह गुन्दोज	प्रत्युत्तर	46
रमेशचन्द्र शर्मा 'इन्दु'	मानव के मदर्म मे	47
कमला वर्मा	निमंत्रण वापस ले लो	49
कमर मेवाड़ी	कविता	50
गिरीश 'विद्रोही'	मेरी इच्छाएँ	52
फतहलाल गुर्जर	दूध किसे ?	53
चुन्नीलाल भट्ट	हापकू	54
नमोनाथ अवस्थी	मौसम तो बदलेगा	55
भूपेन्द्र अग्रवाल	प्रतिबन्ध	56
	नगर तुम	57

जनहराज पारीक	घाघों देनों	59
प्रदागनारायण तनिक	साधारण साग	60
प्रभात कुमार प्रेमी	घट्यास	62
दुमारी गुमान श्रीवास्तव	घरप्य रोदन	64
दुप्यन्त स्यास	बोहरा	65
भगवतीतात ममा	बुजुगं	66
हरीश स्यास	घाव्यासन	67
बी० एल० घरबिन्द	गजल	68
अजुन घरबिन्द	उजमी विरग के लिए	69
	नियति	70
घतिनेवर	गुम्हारे हाथ में	71
	रोशनी की शीश	71
रमेशचन्द्र भट्ट 'बन्देग'	बनजारा जीवन	73
	हम बिगन बोन	73
रामनिवात सोनी	प्रश्न-नई व्यवस्था क	75
घशोक पन्त	गूरज की ऊमा घोर घादनी	76
मनमोहन भ्वा	घासदी	78
मोहम्मद गदीक	गजल	79
	गीत	79
पृथ्वीराज दवे 'निरास'	साग	82
प्रभात 'प्रेमी'	घादो के रत	83
जनहराज पारीक	गजल	84
भगवती प्रसाद गीतम	मेरे गांव में	85
व्रज भूपण भट्ट	रोगी का विरवात दे दो	86
नमोनाथ घवस्थी	हस्ताक्षर फेर गया	87
	खो गये मवादो का मूल्य	88
	धूप का चकव्यूह	89
महेशचन्द्र वर्मा	सुबह का मूरज तो घायेगा ही	90
मोडसिंह वस्ता 'मृगेन्द्र'	गीत	93

सोहनवास प्रवागति	रात्रनीति	94
कंसाम मनहर	गीत	96
	कविता	97
रश्मि गुप्ता	दो कविताएँ	98
भगवतीवास व्यास	घमेल उत्तराखण्ड के एक घादिवासी गाँव	99
माधव नागदा	तमाग	103
निष्कान्त	वधापं	104
घग्नी रविट्टुम	हृत्कीर्तने	105
घञ्जीर घात्राद	गत्रस	107
	गत्रस	107
देवेन्द्रकुमारी मिश्रा	गत्रस	109
रामस्वरूप 'परेश'	गत्रस	110
घजुंन घरविन्द	गत्रस	111
मालचन्द मोनी	शिदार दिपत	112
कमर मेवाड़ी	मुक्ति पर्व	113
घजुंन 'घरविन्द'	गुग्द यात्रा	115

□

□ शशिबाला शर्मा,
समझ के दायरे

ये माना कि

मेरी समझ को परम्पराओं के मर्पं ने हर बार डसा है
तुम्हारा ग्याल होठों पर जब भी आन बसा है

वेशम,

मेरी मासूम मुस्कराहट ने खुशनुमा सौगातो के पैगाम
कई बार बुलाये है

और गूने मंजर मे

नशीले ग्रहसाम के दिये कई बार मिलमिलाए हैं

मगर,

हर गुहार मेरे द्वार से अनुत्तरित
चुपचाप फिर गई है

क्योकि, हर बार मेरी आसों में

युगीन सस्कारों की संख्या घिर गई है

फिर भी ये सच है कि

तुम्हारे चेहरे पे जड़ी ऐतिहासिक लिपि को

मैंने बढी हसरत से पढ़ना चाहा है

जबकि

तुमने सिर्फ शब्द मांगे हैं
और वक्त के खंडहर पर
हर साहजहाँ की तरह
एक दुर्ज गढ़ना चाहा है ।



अवृञ्ज अहसास

दर्द के पाव नही होते,
जब आता है चुपचाप, वे आहट,
हर डर से देखीफ, रग रग मे उतर जाता है
मेहमानियत की दरकार नही
गैर दिल को अपना ही घर समझ पसर जाता है ।

आसुओ का कोई मौसम नही होता,
मन के नीरब आकाश पर जब वे-रुत वादल छाते है
घटाये छिप कर रुन्दन करती है
बिजलिया वे-आवाज कडकती है
ओठो की थरथराहट को लाज के रेशे पी लेते है
मगर कोर के पहरुये यू वे-सुध हो जाते हैं
कि बेशकीमती मोती चुपचाप निकल आते है ।

रिश्तो के नाम नही होते,
वक्त के सलीब पर जब ख्वाहिशो के मसीहा
चुपचाप सो जाते है
पोढियो की परम्परा को भुठलाकर,
रिश्ते खामोश हो जाते हैं
मगर अयाचित क्षण मे, कुछ खुशनुमा सदभं
अनायास ऐसे जुड जाते है
कि वे-नाम चेहरे भी युग-युग की पहचान बन जाते है



अबूझ अहसास

दरद के पाव नही होते,
जब आता है, चुपचाप, वे आहट,
हर डर से बेसोफ, रग रग में उतर जाता है
मेहमानियत की दरकार नहीं
गैर दिल को अपना ही घर समझ पसर जाता है ।

ग्रामुग्रों का कोई मौसम नहीं होता,
मन के नीरव आकाश पर जब बे-रत बादल छाते हैं,
घटायें छिप कर क्रन्दन करती हैं
विजलिया बे-आवाज कड़कती हैं
ओठों की धरधराहट को लाज के रेशे पी लेते हैं
मगर कोर के पहरेयें यूँ बे-सुध हो जाते हैं
कि बेशकीमती मोती चुपचाप निकल आते हैं ।

रिश्तों के नाम नहीं होते,
वक्त के सलीब पर जब ख्वाहिशों के मसीहा
चुपचाप सो जाते हैं
पीढियों की परम्परा को भुठलाकर,
रिश्ते खामोश हो जाते हैं,
मगर अयाचित क्षण में, कुछ खुशनुमा सदभं
अनायास ऐसे जुड़ जाते हैं,
कि बे-नाम चेहरे भी युग-युग की पहचान बन जाते हैं !



□ ब्रजभूषण नट्ट

जिन्दगी : अंगारा

घाज

मानव-जिन्दगी

एक दहकता अंगारा है,

जो

पल-पल जल-जलकर

दूसरो की रोटी संकता रहता है,

और जब

वह खाक हो जाता है, राख बन जाता है

तो

उससे जूठे बर्तन माज लिये जाते हैं ।



आम : आदमी

घाज

आम आदमी

आम की तरह है,

जिसे

रईस चूसकर फेंक देते हैं,

और

गुठलियों को जमीन में गाड देते हैं,

जिससे

फिर और आमों को चूसा जा सके ।



□ सांवर दइया

चाकू की नोक पर

वैसे उसके वसन्त को
वसन्त कहना गलत होगा
क्योकि
उसने न तो
हरे-भरे गदराये वृक्ष देखे
न फल चखे

न सूंघे फूल
न चिडिया चहचहायी
न फूटी कोई गन्ध ही वहा
लेकिन श्रीमान् !
वर्ष की एक खास ऋतु का नाम
वसन्त है

अतः हे सम्य जनो !

(आपके लिए यह सम्बोधन मेरा है उसका नहीं)
वसन्त की बीस खाइया फाँदकर
इस बाग को,
ठहरिये

इसे बाग की जगह
जगल कहना अधिक उपयुक्त होगा,
(वह तो जगल ही कहता है इसे)
हाँ, तो इस जगल को
समझने लायक हुआ है

जब से वह

तब से

वह हर वात का फंसला
चाकू की नोक पर चाहता है !

जन-जन को लगे—
मेरा हर आखर अक्षत
दर्द की यह यात्रा
चलती रहे अनवरत
भीतर मे बाहर
बाहर से भीतर
इस यात्रा में
मैं मील का पत्थर
बनूं / न बनूं
लेकिन
सजग यात्री अवश्य बना रहूं ।
मील के हर पत्थर को
पीछे छोड़ता
उस छोर तक जा पहुंचूं
जिसके आगे
मील का कोई पत्थर न हो !



वाल वर्षोपरात एक सन्दर्भ

जब मैं

अपने बूढ़े और बीमार पिता के लिए

मुसम्मी या रस निवाल रहा था

मेरे बच्चे बॉन मुझ से—

पापा ! हम भी फल खायेंगे

मैंने उन्हें

फल के बदले टाट दी—

अब कुछ बोले तो

छत्ती तैयार है

इतना तो सोचो —

बाबा बीमार हैं

उन्हें रस की दरवार है !

सुनकर बोले वे —

अच्छी बात है

हम भी बीमार हो जायेंगे

तब तो आप

फल खिलायेंगे !

साप की तरह

फन उठाये खड़ा है प्रश्न

और

हवा में भूल रही है हरामसोर चुप्पी !



□ पुष्पलता कश्यप

स्थितिप्रज्ञ

टूटन और मायूसी विस्तार पा कर
विखर-छितर कर शाद हो गई है
रोशनदान से उतरते हुए प्रकाश के 'पेचेज'
वदन पर प्रकीर्ण होकर भी
किसी भी अवस को पूरी तरह नहीं उभार पाते
मेरी आखों में यह कैसा सन्नाटा जन्म ले रहा है....

कोण और समय की भिन्नता को
मैं क्या समझूँ, जानूँ ?
अल्पतम दूरी के बीच की रिक्तता
घनत्व के हल्केपन का अहसास करा कर रह गई है
इस विशिष्ट उलझाव का
निर्णयात्मक 'रेस्पांस'.... ?

तैरती आवाज़ मुस्कराहटें या गमगीन उदासिया
वचाव का प्रयास हैं
चाबियों को खोकर
सन्देहों की नजरोँ के बीच
हम अपने 'ग्रॉन्जेक्ट्स' से जूझ रहे हैं
आतङ्क से रफ कर,
धम कर,
प्रतिचेष्टायें अँडे पैदा करने लगी

प्रातःकालीन पारदर्शी, मुग्धी अंगड़ाइयाँ

अब पहां है ?
तीमे सूरज का बोझिल लघादा
नम्बवत् तनवर
तार-तार कर रहा है,
थपान वही षी षही
म्यही हृई तिलमिला रही है
केवल टुकड़ों में बटी हृई
मंयमे छोटी विभाजित रेखा के नीचे
घोड़ा-सा
बुद्ध गरम है ।



अपने उद्देश्य के लिए

एशट्रे में इकट्ठे हुए सिगरेट के ठूठों को
चुपचाप गिनने की कोशिश में
वह समय के गुच्छों में उलझी अनेक आकृतियां देत रहा है
आंखों में कोई कैमरा-लेंस फिट है ?

या किसी सांप की आंखों की याददास्त उसमें घुस गई ?
गोली लकड़ी की तरह सुलग रहा है वह

खुशियां जो कभी वाचाल और अल्हड थीं
उसकी अन्तड़ियों के उलझाव में खुब कर
बुदबुदों के बीच ठण्डी हो रही हैं

शीशई-दीवार के उधर वह है
अब मैं उससे उसके जिस्म को अलग करूंगी
पूरा जिज्ञासा के साथ देखूंगी
उसका दुःख मेरी शक्ल से कितना मिलता है !
जज्बात के रेशों के बीच जो अभीष्ट था
कांटों, पत्तों, टहनियों, डंठलों ने उसे कितना ढक लिया है ?

पूँ क्या, शोर करो, चीखो, रोओ और हसो, दोस्त,
गुस्से को, आक्रोश को पीना अस्वस्थता है
यह पर्यावरण हमारा क्या लेता है ?

अकेले तो पहले भी थे, अब भी हैं
तन्हाइयो के बीच जीने वालों के लिए
मुस्कराहट के अनुवाद के कुछ मायने हैं

तुम भूल गये हो, दोस्त !
बहुत सोचकर ही इस महावात्याचक्र को घूरने, ताकने
और समझने का पेशा अस्तित्थार किया था हमने
और अब यहा समझीते के लिए कोई भी नहीं है ।



सुखियाँ

आदमियत के कई हिस्से हैं
कई हिस्से मर चुके हैं
कई हिस्से जी रहे हैं :

नेताजी युवक अधिवेशन में भाग लेने आये
घोर पाच करोड़ रुपया खर्च हो गया

आठ वर्ष का शैशव
जुवारियों और शराबियों के बीच
पापड़ और मूंगफली बेचकर
घर पर दो बिलो आटा लाया

स्टोव के पिन, अगवती और माचिस बेचती हुई
उसको गरीब माँ अपना जिम्मा भी बेचती है

हीरो ने "गरीबी" फिल्म के लिए बीस लाख रुपया ले लिया
और खतरे के सीन में दुप्लीकेट ने
अपनी जान गवा दी

उसे एक हजार रुपया दिया जाने वाला था
इसी फिल्म के गीतकार ने बारह पकित के एक गीत
के लिए छ हजार की और विलायती धराब की माँग की

कवि ने अपना सब कुछ दांव पर लगा कर
पचास थैल-साहित्यिक मूल्यों का कविता-सफलन स्वयं छपाया
और छः वर्ष में तीन रुपये मूल्य की बह
पच्चीस प्रतियाँ बेच पाया

सिनेमा में पांच रुपये का टिकिट
आज पच्चीस में विक्रय हुआ

भतीजी की शादी में नेकलेस
प्रजेन्ट देने के चक्कर में
हैड क्लर्क रिश्वत लेते हुए पकड़ा गया
और धाद में जमानत पर छूट गया

बूढ़े ने दिन भर में तीस अखबार बेचकर
सवा रुपया कमाया
माचिस और वीडो का बण्डल लेकर
और दो कप चाय पीकर वह घर लौट गया

भिखारी ने पचास पैसे के भगड़े को लेकर
साथी के पेट में छुरा भोक दिया

वकरी के बच्चे और रमेश का
जन्म एक दिन हुआ था
और आज
रमेश की पहली बपंग्गाठ पर
वकरी के बच्चे की बोटिया
देग पर चढ़ गईं

वह पूरी जिन्दगी मुकदमे लड़ता रहा
और दस मकान उसके नाम हो गये

सोने के ताबीज को छीन कर
एक विक्षिप्त आदमी ने
एक बेकसूर को कुर्छों में डाल दिया

आदमियत के कई हिस्से हैं
कई हिस्से मर चुके हैं
कई हिस्से जी रहे हैं।



□ शिव 'मृत' .
छोटे से बड़ा .

जब मैं
छोटा था
जिन्दगी
'मुन्नी' थी
बड़ा हुआ
जिन्दगी
'मून्नी' हो गयी
घन्तर
बुद्ध नहीं आया
बड़ा होने के साथ
उ' की मात्रा
बढी हो गई ।



□ चतुर फोठारी

तूफान

समुद्र में

अब, चाहे कितने ही

तूफान क्यों न आएँ

पर

इन वत्तीस वर्षों में

हम अच्छी तरह

रख समझ गये हैं कि

ये तूफान असली नहीं

नकली है ।

ये

लम्बे समय तक

टिकने वाले नहीं है ।

इनसे

किनारे पर बसी बस्तियों के

नष्ट होने का

कोई डर नहीं है ।

इन तूफानों को

पैदा करने वाले

नाविक भी तो

इसी समुद्र में हैं ।

उनकी नावें भी तो

लगर डाले खड़ी हैं

फिर तुम
नागे घोर घोपणाघों की
कितनी ही
गर्जनाएँ क्यों न करो,
हम तुम्हारी प्रगलियत को
जानते हैं
इगोसिये सभी चुप है
समय पर
बोट के हथियार से
तुम्हारी नाव में
छेद कर जाएंगे
घोर तब
तुम्हारी नाव को
समय के तूफान में छोड़
भागें बड़ जाएंगे ।



□ अमरसिंह पांडेय

महाभिनिष्क्रमण !

उस दिन एक दुर्घटना हो गयी
राज महलो से निकल कर
कविता कही चली गयी
और जब 'दुनिया' जागी
तो

जितने मुह उतनी ही बाते थी
एक सज्जन कहने लगे —

मैंने उसे खेतो की ओर जाते हुए
देखा था,

पसीने से तर किसानों के बीच ।

एक अन्य व्यक्ति बोला—

“भई मैंने तो उसे

मिल के मजदूरो से

घुल-घुल कर बाते करते देखा था ।”

दूमरी तरफ से आवाज आयी—

“मैंने तो उसे अघो

और गदी गलियो में भटकते देखा था ।”

एक महानुभाव बोले—

‘मैंने कविता को

राजमहल छोड़ कर

सडक पर आकर

‘ग्राम-ग्रामदमी’ की भीड़ में

सो जाते हुए देता था ।”

इतने में

एक घबराव भरा बोले—

‘मगता है कविता

कही-न-कही भटक घबराव गयी है ।

इतने सारे सौगों के ‘मन्थन’ में घाबर

उमका “मनोत्व” क्या रहेगा ?

यह ‘जानि-भ्रष्ट’ ‘नक्षत्र हान’

घोर बि ‘वर्ण’ हो गयी है

उमकी ‘सरसाता’ हिरा गयी है,

उसके ‘वृत्त’ की बात करना व्यर्थ है

उमके घाभिजात्य के “घाभूषण”

छिन गये हैं

यस्तु यह ‘मगविता’ हो गयी है ।”



संक्षेप—ब्रह्मि मुञ्जानि, गुमराणी, गुवरन सरग, मुष्टन ।

भूषण विनु न विराजई, कविता कविता मित ॥—केशव

□ चैनाराम शर्मा

व्यू में लग जाइये

आइये,

व्यू मे लग जाइये ।

वरसों पुरानी विखराव की स्थितियां

समेटते हुए चले आइये !

व्यू में लग जाइये !

आपकी इज्जत और शान के लिए

रोटी, कपड़ा और मकान के लिए

हमने बराबर आपका आह्वान किया है

आपकी अहमियत का बीड़ा अपने कंधों पर लिया है

आप बेधड़क हो, तालियां बजाइये

व्यू में चले आइये ।

यह व्यू आपकी अपनी है

और आप ही के लिए

इसे बनाये रखिये, न तोड़िये

हम इसी के बल पर

विगत कई वर्षों से जूझ रहे हैं

और आपकी छोटी-बड़ी हर समस्या को

बूझ रहे है ।

हमारे हाथ के इशारे पर ही

चमचाप सड़ें हो जाइये ।

और व्यू में लग जाइये ।

आप अपने को व्यू से जोड़िये !

अनुशासन मत तोड़िये !

अनुशासन एक पर्व है

दूसी पर हमे गवं है
हम विश्वास दिनाते हैं कि
घाने याले कई यपो तव
गरीबी और भूगमरी से
सटते रहेगे
घोर
इम यू की मुरक्षा के लिए
मरते रहेंगे ।
बिसी तिरफिरे के बचंश नारो से
घाप मत हूटबडाइये
घपने कानो पर
घगुली घर
इघर गिमर भाइये ।
घोर यू मे लग जाइये ।



□ मगरचन्द्र दवे

परिणति

एक नाव मे
कुछ नाविक बैठे-बैठे
संलग्न हुए
हवा के विरुद्ध अभियान चलाने को ..
सभी ने कसमे खाई
वादे किए . ..
अन्त तक हवा को पराजित करने मे ..
कधे से कधा
भिडाएंगे,
दिखा देंगे दुनिया को
संगठन मे बल है ।
डूबेगे तो एक साथ
तरेंगे तो एक साथ
हवा विरोधी अभियान चला
नाव कभी आगे कभी पीछे
हिचकोले खाने लगी ..
हुवा और प्रबल हुई
धीरे-धीरे एक-एक कर बोला-
अब तो हवा के मुताबिक
चलना ही बुद्धिमानी है
समय का तकाजा है .
एक नाविक, जो
नही कर सका
इन नाविको के
विचारो से समझीता

नही मिला तब उन्की हाँ मे हा
उमे दसांग लगाकर
दरिया की गोद मे
नमा जाना पदा...



यह मेरा कसूर था

यह मेरा कसूर था
कि, मैने उता जगह
सरसो सहलहाने का प्रयास किया
घार-घार तरता रहा
जो भूमि पूर्णतया वंजर थी ..
फिर.. . !
कदम तो तुम्हारे भी
मझे दिशा की ओर घडे थे . !
तुम्हे जाना था
प्रयास का दिया जलाकर
भूमियों में
भोपट्टियों में .
जहा निरा अन्धकार बसता है
गरीबी निवसना.. . !
परन्तु तुम पय-भ्रष्ट हो गई
तुम बहा गई
जहां पहने ही
हजागे वाट के बल्य जल रहे थे
रग-गिरगे . तरह तरह के
और सब मिलाकर
उठा रहे थे तुम्हारी खिल्ली

कर रहे थे उपहास
तुम्हारा
और
तुम्हारे मिट्टी के दीपक का.?

●

विडम्बना

जी चाहता है कुछ लिखूं ।
और ना सही
इसी माध्यम से मन का भार
कुछ हल्का करूं—
जो अब बोझ प्रतीत होने लगा है . .
परन्तु
बात की शुरुआत कहा से
अन्त कैसे करूं ?
इसी उधेड़बुन में
विचार सावन की बदली की तरह आते हैं .
सावन के बादल बरसते हैं
फिर रीते होते हैं
पर, मेरे विचार
वे बरसे,
इसके पूर्व ही रीते ही जाते हैं
मेरा मन संतप्त है
वह कुछ कहना चाहता था.. .

●

□ रामस्वरूप परेन

गजल

गुम हुई चाची के दर्राज की तरह
गुद में गिमटे सभी समाज की तरह

पन तो यक्त की गिरवी रग दिये
हैं भटपते निरर्थक प्रायाज की तरह

टंगे रहेंगे ये मभी सलीब पर
माने म्यार्षों को नमाज की तरह ।

हाशिये में जीने के प्रादी हुये
ददं दुहराते जो रियाज की तरह

द्वार की सांक्स को बजाता सूरज
गुम पड़े टूटे हुए साज की तरह ।



□ कुन्दनसिंह सजल

गजल

हवा पहलू बदलने लग गई है ।
ताजगी उसमे पहले-सी नहीं है ॥
आँकड़े कह रहे हैं देश बदला
मगर मेरा मोहल्ला तो वही है ॥
लोग जो खोजने निकले सुबह थे
उन्हे भी साफ़ ललचाने लगी है ॥
गाव का रामधन भी जानता है
नई दिल्ली भी अब कितनी नई है ॥
पुराना सूर्य तो डूबा यह सच है
नये पग भी धुआ छाने लगी है ॥
शहर से सीखरु सतपाल आया
बदरो का ही वंशज आदमी है ॥
आज दक्षिण से उत्तर कह रहा था
उगे सूरज जहा पूरब वही है ॥



विष पीकर पी लूँ गगा जल

मेरे बाहर की खामोशी, मेरे अतर का कोलाहल ।
ऐसे भोग रहा हूँ जैसे, विष पीकर पी लूँ गगा जल ॥
मौन रुका अघरो के द्वारे
लेकिन मन ने पंख पसारें,

जीवन बीता व्यासा-व्यासा
इच्छामो के बंठ बिनारे ।

सपनी मुपिया का मुक्ति सावन, उनको विम्पुतियो का मद्यल ।
ऐसे भोग रहा हूँ जैसे, विष पीकर पी नूँ गगा जल ॥

भोर धधकी भीषण ज्वाला,
दोपहरी का दर्द निगस्ता,
सपनी का स-ध्या ने तम मे-
तन रग टासा मग रग टासा

दिन दुविषामो का दावानल, रात जंग रमवा काजल
ऐसे भोग रहा हूँ जैसे, विष पीकर पी नूँ गगा जल ॥

सदय हीन हर सपर अनिश्चिन्ता
दुहरे, तिहरे पय अपरिचित,
हमराही, हमसपर हो गये
भूठी वरमं धुले दस्तगत ।

प्रतीक्षा की पीटा प्रतिफल, तन्हाई का पग-पग सम्बल ।
ऐसे भोग रहा हूँ जैसे विष पीकर पी नूँ गगा जल ॥



□ नन्दकिशोर चतुर्वेदी

कुछ नहीं

कहने को कुछ नहीं
समझ उधार ली
शब्द मागे
अक्षर खरीदे
कहने को कुछ-कुछ है
पर बोल नहीं
और बोल नहीं तो
सारा बवाल व्यर्थ
फिजूल हुये अर्थ
कहने को बहुत कुछ है
उन शर्तों ने पंदा करदी
काली अन्धी भटकन,
भटकन ने पंदा किया
विखराव-
विखराव से दर्द
दर्द से चिन्तन
चिन्तन से तुम और तुम्हारी
-कविता

कहने को बहुत है ।
अपना अह और चेतना
सब मे थी मन की वेदना
तब बह गई
तन की,
मन की,
आखो से सरिता

धीरे-धीरे पर एक साथ
मरु बंजर हृदय पटल पर,
कुछ दिनों तक
मृदुता के स्वप्न
—कविता

घोर घनहृद गाद की गल्पना,
किन्तु छेड़ गया
ममय का सूर्य
मीन तब हुये क्षण
घहं....
घोर
तब भाग पड़ी तुम
सुम्हारी कविता
रको : रको रको
नही नही नही
प्रब बहने को कुछ नही
मिफं ददन, चीम चित्लाहट
या मीन मिसकी भी नही
कुछ नही, कुछ नही ।

झिगुरों का शोर

रात को हमने
दुधोकर खडिया के घोल में
उजला कर दिया
भाग कर अंधियारी भीड़ से
चांदनी की झलक में
प्रकाश की ललक में
बांधना चाहा था बसमसति मनो को
कंदकर बुदियाये उजालों में

तव हृत्प्रभ सी
दुवक गई भिगुरों की भीड़
प्रतिध्वनियों के ढेर में
खड़िया की कृत्रिम सफेदी में
सिमटते गये भीपड़े और नीड़

किन्तु

रहती कब तक
बंदी हुई सच्चाइयां
खड़िया घुल गई
अधेरा विखर गया,
हर्ष के अतिरेक में
व्याप्त है पुन. चहुँ ओर
भिगुरो का शोर



□ श्रीनन्दन चतुर्पदी

विनय

कृष्ण-कन्हैया
धन-जग के रमयालं
दो नम्वर के राते
तुम्हारे हवाले ।
अपना यहाँ क्या हूँ ?
जो दिखता, सब तुम्हारा हूँ ।
छल और भूठ तुम्हें
अचपन में प्यारा हूँ ।
परम पिता हो तुम-
हम तुम्हारे बच्चे हैं ।
अच्छा-बुरा क्या हूँ ?
पहचानने में बच्चे हैं ।
हम तो बालकृष्ण का
अनुकरण करते हैं ।
जिन्दगी की सुख-सुविधा
सूट कर चरते हैं ।
श्री बाले कन्हैया !
तुम से बड़ा कौन हो
बाले का रखैया ?
मेरी काली पूंजी
थोड़ी और बढवा दो ।
भक्त हूँ-
भाँपटी पर
दस मंजिल चढवा दो
अधिक नहीं,

□ प्रभात 'प्रेमी'

तुम और मैं

हेड-टेल की तरह
दो पहलू हो कर भी
हम एक थे
परन्तु ! एक दिन
जहर बुझे तीर सा
तुम्हारे मे
मैं' बुम प्राया
और उन दिन
तुम मर गये
फिर भी
आज तक मैं
'मैं' को गले
नहीं लगा पाया
और तुम्हारे
तुम बनने की चाह मे
जिन्दा हू



□ सात्रिथी परमार

हम हुए तलाश से

पगडण्डिया से

गट रहे हैं

हर सपर म हम ।

पाव है धवे धक्

क्षण रहे हुए

सास है जमे-जमे

स्वर बुभे हुए

नामहीन

जी रहे हैं

हर शहर में हम ।

प्राधिया म हम

वही तलाश म हुए

घप गर्द छोड़कर

पलाश से हुए

रेतवण से

बुभ रहे हैं

हर नजर मे हम ।

घार से छुटे हट

बगार मे हुए

घाटिया मे गूजती

पुकार मे हुए

अर्थ हीन

जुड रहे हैं

हर मबर से हम ।

कौन किसे कहे यहाँ .

सूरज की बाहो के
जस्म बहुत गहरे हैं

घूष की निगाहो मे
ददों के कतरे है ।

अनचाहे क्षण मिलते
सहने की मजबूरी
दिन-दिन बढ़ती जाती
सबधो की दूरी

कौन किसे कहे यहा
भावहीन चेहरे हैं

पहचानी राहो पर
अनजाने खतरे है ।
आगन के ओठो पर
खामोशी सी उतगे
लगता है कोई हवा
तेजी से है गुजरी

आस पास हरदम ही
सन्नाटे ठहरे हैं

गलिया और चौराह
लगता सब बहरे है ।
जीवन मे रग नही
महक नही कस्तूरी
अर्चन की वेदी पर
भाव नही कपूरी

जीने के मूल्य सभी
अर्थ-हीन सकरे है

चितन के द्वारो पर
कुण्ठा के पहरे है ।

बतियाते धूप छाव. ...

वई आचमन
बटवाहट के
परते मुंह अधियारे
भोर प्रापेना
उगते मपने
गधहीन घोर गारे ।

विस्मो की
बतरने लिये
दिन फिर गर्द के साथ
धूप-छाव
बतियाते मिलकर
पीर-दर्द के साथ

अगबारी
चेहरो की बस्ती
भीड़ भर गलियारे
सहराते
विश्वास रौंद कर
शाग-शास पर नारे ।

लिसे हुए हैं
दीवारों पर
अस्त्रीवार अध्याय
मदी पढ रही
अपराधों के
नये-नये पर्याय

टेन्डे-मेडे
पैरदो मे
बंद हुए उजियारे
जीवन की
बसियत के पूरे
बदल गये त्रप सारे ।



□ आनन्द कुरेशी

कविता

अपना हाथ
मेरी हथेली पर रख कर देखो,
या फिर मेरी आखों में
सिमट कर देखो,

एक हाथ से
दूसरे हाथ का सग,
या

एक आख से
दूसरी आख का झोर,
महज एक पल में
पूरी जिन्दगी को,
खींच लेने में समर्थ है।



□ दीपचन्द सुधार

उभरते चित्र

रवाना होती रेलगाड़ी को देख

हाथ हिलाकर

अभिवादन किया था

उन्हीं क्षणों में

तेरे नयनों में

गिरती बूँदों को देखा था ।

लेकिन—

यमल के पत्तों पर गिरी

बूँदों की भाँति

अन्त में छितर गई ।

मैं इन्द्र धनुष के रंगों में सम उभरी

चित्रावली को

खोया खोया भा

निहारता रहा ।

विचागो के अथाह गहर

नीलाम्बर की तरह विस्तृत सिन्धु में

विचरण करता रहा

पनहुँद्री के सदृश

अन्तत

अंगुलियों को स्पर्श करते ही

विभक्त हो गई

इतस्तत बिखर गई—

लुप्तक गई ।

इस तरलता कीमलता में

निहित रहस्यों को

शब्दों का अलग-गुंठन उठा-उठा
 चन्द्र की ज्योत्स्ना में
 अन्धेरी निशा में
 तो कभी
 रवि के तीव्र प्रकाश में
 अविराम खोजता रहा ।
 लेकिन कारण—
 बहुरूपिये की नाई
 नित्य नये लिखासों में
 दृष्टिगोचर होते रहे
 युगों से प्रयत्नशाल हूँ
 फिर भी
 अद्यावधि
 प्रश्नवाचक बने हुए है



राहगीर

जिन्दगी पुलिन्दा है
 अरमानों और जिज्ञासाओं का
 जिमका हर पन्ना
 निशि-वासर
 कोलतार की सड़को पर
 कभी रेत के टीलो पर
 तो कभी—
 हरी हरी मखमली दूब पर देखता हूँ ।
 पी आसुओं को रहा हूँ
 फिर भी
 तल्लीन हूँ
 हर्षित हूँ
 तो कभी गमगीन हूँ
 श्रान्त होकर भी

घनगिनन राहो के छोर नापे
 निहारते-निहारते
 छिप गये चांद व तारे
 जेकिन मिली नही उद्गारो की कलिया
 दमती नही—
 घन्धु कणो की लडिया
 स्वप्न के बृहरे मे
 घाञ्छादिन रहा
 भागाघो का दशांक
 कल्पनाघो की वामन ह्येतियो मे—
 रची नही मेहदी
 पर/वासुरी ने
 स्वर लहगियों की माग को भरा है
 नन्ही-भी बूंद ने
 रूप/इन्द्र धनुष को दिया है
 मृत्ता को जन्म
 तो/शृ गार सुन्दरियों को दिया है
 पाट दो ददं को
 महक को विस्तार नापने दो
 राहगीर हो—
 निरन्तर चलते रहो



□ दुष्पन्त व्यास

जाल

अघेर मे तने
एक जाल काटने के बाद
लगता फिर
नया जाल बाध दिया गया है
जो पहल स ज्यादा
मजबूत है, कठोर है ।
जिसमे फस गया है
क्राति का मसीहा
अब क्या हो
पहले वाला जाल दिखता तो था
यह नया जाल अजाल है
दिग्बत हुए भी न दिखाई देता है
ऊपर से फूल सा अन्दर से शूल-सा
और मैं
फिर दीप की प्रतीक्षा में



□ अब्दुल मत्कि खान

लूट लिया मौसम ने

मूट लिया मौसम ने मनरगी गाव ।
मूरज ने रपट लिखी यादन के नाव ।
पिचक गयी मरिता के पेट की उठान
फलसाई पगडण्डी, ऊ पते मचान,
फललों की रनभून के ठिठक गये गाव ।
एक जून मिरच घोर एक जून नून
पानी के भाव चट्टे मंहगा है चून
वाचुन का घर उजडा वहा मिले ठाव ।
दरक उठी भीतर की गहराती चोट,
उन्नट पपी जाले बपो हः मीषी शोट,
हार गया मन पापी पहला ही दाव ।
अधियारा व्याह गया आगन की धूप,
मदिरालय बेच रहे पूनम का रूप
मपनो की सोनचिडी डूँड रही छाव ।



कुछ देर के लिए

आओ ! बात करें उन गर्वोले पहाडो से
जिन्हें हमारे पुरखो की अनगिनत गाथाएँ कण्ठस्थ हैं,
नापें उन सहलहाते मैदानो को
जिनका हरापन किशोरो की कामनाओ सा
दूर तक फैला है,

महसूस करें अमलतास की आव
टेसू के मन का रगीन सैलाव
देखें पछियो का उडना
और फौज सी जाती हुई चीटियो की वतार
भरने मे तैरती सुनहरी मछलिया
और सुनहरी किरणो की छुवन का मजा लूटता हुआ
सरसो के खेत मे खडा सारस का जोडा,
आओ, दूध सी चादनी मे
मिसरी सी हवा घोल कर पी ले
और, कुछ देर के लिए भूल जाएं इस हादसे को
कि हम बीसवी सदी के इन्सान हैं ।



□ नमोनाथ अथस्थी

पांच साल

मावधान !

यह देश कचरे का कूड़ा नहीं है
भगवान का मन्दिर है
घोर हम लोग इस कूड़े को ढोने वाले
मंहतर नहीं पुजारी हैं
तुम्हें अपनी दान-दक्षिणा
चढ़ाना हो तो चढाओ
वरना हम पांच साल के लिए
मन्दिर का दरवाजा बन्द करते हैं ।



तुम्ही से पूछता हूँ

तुमने जो दीवार रची है
उममे कहा होकर छेद है
कि गोली निशाने पर नहीं लगती है
और सारा उफान हवा में होकर निकल जाता है
आकाश बेहद ठंडा है
और शब्दों के कारीगर एक-एक रास्ते पर
मशीनगन लगाये बैठे हैं-
कि भी लोह दारों की जंजीर चरमराती नहीं है
लगता है संभवाती किरण
धूल उड़ाती हुई

इतिहास को धक्का देकर निकलती जा रही है
और हम सब कागज की गेंदों से
खेलने का उपनम किये चले जा रहे हैं
यह खेल कब खतम होगा
प्राचीरों की वंशवेल कहा जाकर टूटेगी
और लौहे की मजबूत तालों के किलों पर
पहरेदारी का नम्बर कब हटेगा
मैं तुम्हीं से पूछता हूँ
मेरे समान धर्मा-मौन
मैं तुम्हीं से पूछता हूँ ।



□ बायू हसमुख

कविता

कंवयो । हर युग में हुआ करती है
राम को । उसके वचन के बदले ।
हर वक्त । मिलता रहता है-
वनवास
घोर शहर भी तो ।
एक घना वन ही है-
जहा । जिन्दगी जीने की तमन्ना का ।
सम्पूर्ण राक्षस ।

राम से लड़ने को घातुर है
लेकिन इस युद्ध में
न जाने क्यों ।
हार जाया करता है, राम-
घोर खो देता है / सीता को
भरपेट रोटी / और शराब के
गिलास के लिए ।
जिसके नरो में । वह
भूल सके / अपनी सीता के
सतीत्व की उठती हुयी साढी.....
और खुद को बचाने के लिए
बिक जाती है / सीता भी
में सोचता हू ।
लव-कुश / किसकी सन्तान है ?



□ विक्रमसिंह गुंडोज

प्रत्युत्तर

पूछते हैं लोग कि
दर्द क्या है ? कहा है ?
दर्द सिमटा है
पर्तं दर पर्तं
सलवट मे
मन की बगिया के
हर एक भुरमट मे
क्या बताऊ मैं
कि दर्द कहा है ?
जितनी कुरेदोगे पग्ते
एक-एक हटती जायेगी
मगर दर्द की सूरत
फिर भी नजर नही आयेगी ...



□ रमेश चन्द्र शर्मा 'इन्दु'

मानव के सन्दर्भ में

धर्म की परिभाषाओं के दायरे
रितने घीन हैं—

मानव के सन्दर्भ में ?

जिन्हे, मानते हो उगत हैं कई प्रश्न
बबून की तरह बटीले / रेत की तरह झतूप्न ।

रात के गहन नीग्व प्रणयकार में—

मेरी गर्भ द्यामो को छू लेना चाहता है

तुम्हारा झतूप्न वासनाओं में लिप्त मन,

जिस्म की भ्रम बनी रहती है—

तुम्हारी ललचाई व्याघ्र-दृष्टि में ।

घीर—

तुम्हें यह भी ज्ञात है कि—

भोजन का भ्रम बनता है

मेरी चक्की का पिम्मा छाटा,

बच्चों द्वारा लायी शहरजी घीर सालन ।

तुम्हारे रच्चों को प्रिय लगते हैं—

मेरे साल-साल सोंधे महकते बेर

चाय में डालने वाली चीनी घीर—

धाली में मजा गुड—

बनता है, मेरा बबुम्मा ।

फिर—

सूरज के उजाले में डरते हो मेरी छाया से
आखिर क्यों ? क्या ?

सूरज के स्पर्श से होगई झछून मेरी देही ।

तुम्हारे भगवान का मन्दिर—

जिसकी हर ईंट ने पिया है, मेरा रक्त/स्वेद
उसे भव्यता दी है—
मेरे अछूत सुहाग ने ।
सब कुछ पवित्र है !
फिर कौन अपवित्र ?
मैं ? तुम्हारा भगवान
यह सूरज/या धर्म और तुम ?



□ इमता यर्मा

निमन्त्रण वापस ले लो

मेरे आंगन में बने हुए
घोम् पर
बिननी बार कीचड़ भरे पांव
रते गये ।
साहना देते-देते
मेरा कण्ठ
राजस्थान की मुग्धी घरती पर-
गाया जाने वाला
चरण लोब-गोत बन गया
मुद्दाग के गीत गाने का
यह निमन्त्रण
चास ले लो और
यह मेहदी किमलिये ?
कीचड़ धोते-धोते
हयेलियां बठोर होकर
'धोर' बन गयी हैं-
अब तो ।



□ कमर मेवाड़ी

कविता

मैं अन्दर ही अन्दर घुटता रहूंगा
तुम अपना तना हुआ चेहरा लिए
दूर किसी खिड़की में बैठी
मुझे देखती रहना ।

कमरे में बजता रहेगा रेडियो
गूंजती रहेगी मेहदी हसन की आवाज
पेंट की हुई दीवार पर फडफड़ाता रहेगा
किसी बूढ़े राजनेता का कलैण्डर
तुम दूर किसी खिड़की में बैठी
मुझे देखती रहना ।

उसके बाद
जब हवा थम जायगी
कमरे में छा जायगा एक डरपोक सन्नाटा
और फडफडाता हुआ कलैण्डर
चुप हो जायगा
तब कापता रहेगा पीपल के पत्ते की तरह
तुम्हारा दिल
तुम दूर किसी खिड़की में बैठी
मुझे देखती रहना ।

उस वक्त
जब समय निकल जायगा हाथ से

हवा गर्म होकर सनसनाते लगेगी

पेड़ उछाते रहेगे गिस्लियां

घोर में

पागलों की एक विशाल भीड़ के साथ

घपना लहलुहान बेहरा लिए

तुम्हारे सामने मे गुजर जाऊगा ।

तब तुम अपरिचित निगाहों से

दूर किसी निड़री मे बैठी

मुझे देखती रहना ।



□ गिरीश विद्गोही

मेरी इच्छाएं

मेरी इच्छाएं
पल-पल मे
गर्भवती होती है
कई परिभाषाओं को
आशाओं को
जन्म देती हैं ।
मेरी इच्छाओं ।
तुम जायज हो
तो उचित है
नाजायज हो, तो
अनुचित,
अपने स्तर से
नीचे गिरना
एक बुरी बात है
ऐसे बुरेपन से अच्छा था
कि तुम बाँझ ही रहती ।



□ फतहलाल गुजर

दूध किसे ?

पास ही

बगले में

एक साहब

पिला रहे थे टोमी को दूध

जिसे

देख रहा था

पड़ोसी रमजान का नहा बच्चा

बोला "अम्मी जान ! मुझे भी पिलाओ ना दूध" !

माँ ने दिलाया विश्वास

अपने भूटे खिलौनी

बचनो से

हा बेटा ! बहूँगी आज ही

तेरे अम्माजान को

लाएंगे दूध"

इतने में

भौंका टोमी

बच्चा बोला

अम्मी ! क्या भौकने वाले को ही

पिलाते है, साहब दूध !'



□ चुन्नीलाल भट्ट

हायकू

भूखे को जाना
भूख लगने पर
वह भूखा है ।
कौन जानता है ?
कुएँ में पानी नहीं
पत्थर भी है ।
गरीब आसू
चिबने फर्श पर
लुढ़क गये ।
एक बेकार
चिल्लाता रोड पर
मुझे रोटी दो ।
कोक का बन्धा
काले हाथ, फिर भी
खुबसूरत ।
महल से गिरा
अटका गरीब की
टूटी छत से ।



□ नमोनाथ अथस्यी

मौसम तो बदलेगा

मौसम तो बदलेगा

दमे बक्षने दो

पत्तों पर लिखेगा बसत पतभर की गाथा को

भाटों पर छायेगी गंध किसी बादल की

हरियाली पानी पर तैर-तैर जायेगी

आयेगा उमर पल

गा-गाकर माने दो

गंध कथा बाचेगी रचना निर्माणा की

छद छटा छायेगी नूतन आह्वाना की

रजत-भागं बोलेंगे

नये नव्य कथ्या में

आदि शब्द बधन की

सुनने अफुलाने दो

मौसम तो बदलेगा, इसे बदल जाने दो ।



□ भूपेन्द्र अप्रवाल

प्रतिबंध

प्रश्न बने दो-चार हरफ
खड़े हो गये
सूखे पेड़
अपनी पत्तियां झाड़ कर ।

उभरे
पपड़ाए शरीर में बहती
धमनियों के जोड़ मे
दो राहे-चौराहे
राहे राहे
दो-दो, चार-चार ।

फैल गए सनसनाते
कटगई जहाँ से देह
चीसते, चुभते, चबकते ।
भागे तब वे
लेकर हथियार
करते आवाज

रोको-रोको
बहने मत दो रोको

यह शब्द कोप,
यह शब्द सार
ले लो उधार ।

अर्थ मत अपना
अपने से ये

हरफ़ ये
जो खड़े हो गये ।



नगर तुम

पहले तुम वीरान थे
बियाबन थे

यह बहते नहीं,

हो जाते हो

सूर्य के थक जाने के साथ

थमते थमते शोर

हलचल थमते-थमते ।

हाथ बंधा समय

जब बदलता है दिन तब

तुम्हारी गिराओ के

बोलतार में जड़े परथर

उठ खड़े होते हैं

बतियाने

सड़क की रोजनी में

घरने अट्टहास

मुस्ताती कोशिकाओं के बन्द दरवाजा पर

मुख्य सड़क का चौराहा

फुटपाथ की कमीज पहन

फँसा देता है दो हाथ,

कुछ दूर जा बन जाता है

दौराहा

पगथलिया लेकर ।

ओ नगर ।

यदि तुम्हारे हृदय में

अतीत की सुरग बन जाय

हो जाए पार तो
हो सकते हो आकाश ।

पर अब

गोल-मटाल पुस्तकालय

पसरे हुए देवालय समेटे

एक सज़ा हो

सपने से सपने तक

खोई सज़ा

इस पर

अवसर वे अवसर

जग जाते हो ।

कर लेते हो याद

अपनी सज़ाए तो ।

थोप दी जाता है ।

चुंगी चौकिया

पचायत,

मुनस्पिल्टिया,

घाट दिया जाता है विभाग

आँख-मुँह

सर-गला,

हाथ-पेट,

कमर-पैर,

टुकड़ो-टुकड़ो में दूर-दूर

करवा दिया जाता है विश्वास

सज़ा ।

जीवित नहीं

मृत रहना तुम्हारी नियति है ।



□ जनकराज पारोष

आओ देखे

चलो, चलकर देखें
रूपिया के घर चूल्हा जला कि नहीं
एक लम्बे घरमे मे
घनिया की जिमकी चाह थी
वह गरीब रामपन्ना
चूल्हा बना कि नहीं ?
आओ देखें
शायद नूरद्दीन का लगान
माफ हुआ हो
घर्मदाम की बही मे
सन साठ स दर्ज
रामस्वरूप का पर्जा माफ हुआ हो ।
हो सकता है
नये दरगा जिलेसिंह क दिल म
गाव की बहू-बेटियो क प्रति
थोड़ी-बहुत हया हो
शोर सभय है
नपेसिंह का छुटवा
नया बस्ता लार
खूल गया हा ।
आओ देखे
कि कुछ हुआ है
या वही ग्रन्थे त्रैल है
शोर वही वेदर्द जुग्रा है ।

□ प्रकाशनारायण तनिक

लावारिश लाश

(17 जून 1979 की सुबह, रेलवे स्टेशन, अजमेर पर एक भिखारिन की लाश पड़ी थी, मुख पर मखियां भिनभिना रही थी, पास में एक कपड़े पर आते जाते लोग उसके कफन के लिये ५-१० पैसे के सिक्के डाले चले जा रहे थे, उमी लाश की तरफ से मैंने ये भाव व्यक्त करने का प्रयास किया है। इस कविता के माध्यम से मैंने नारी की दशा को चित्रित करने का प्रयत्न किया है।

मैं एक लावारिश लाश हूं,
मुझे कफन के पैसे दे दो।
मेरी अस्मत् के ओ लुटेरो,
मैं तुम्हारी मानवता का मूल्य,
नहीं मात्र सिर्फ ब्याज हूं।
मैं एक लावारिश लाश हूं.....

आज चौराहे पर मेरी नहीं,
तुम्हारी माओ बहनों की,
इक दद भरी आवाज हूं।
मैं एक लावारिश लाश हू.....

सदियों से तुमने मुझे लूटा,
तुम्हारे स्वाभिमानी मन रावण की,
सती सीता की पवित्र आवाज हू।
मैं एक लावारिश लाश हू.....

मनु की श्रद्धा, इतिहास की इडा,
वैशाली की नगरवधू आम्नपाली,
के गौरवमय इतिहास की याद हूं।
मैं एक लावारिश लाश हू.....

तुमने मुझे कहा से वहाँ पहुँचाया,
गृहसभ्यी से उठाकर सोठे पर पहुँचाया,
मैं तो उन्हीं घु परमों की भावाज हूँ ।
मैं एष साधारिण हूँ ..

दिन में मफेंद रात में काले,
दिसवालों जग घ्यान स मुना
मैं तुम्हागे प्रर दातयता की भिगास हूँ ।
मैं एष साधारिण मान हूँ ।



□ प्रभातकुमार प्रेमी

अहसास

दूरिया बढती जा रही है
श्रीर मैं तुम्हे
अपनी का अहसास दे
जी रहा हूँ

मेरे जीवन मे
यमुना के तट / वन्सी / कदम्ब
कुछ भी नहीं / फिर तुम्हे राधा कहना
जीवन के बसन्त के साथ
खिलवाड करना है ।

नहीं / तुम वह / शबरी भी नहीं
वर्षों तप / प्रतीक्षा कर
किसी राम को
भूठे वर खिलाने का साहस
कर सको

मीरां सा / निर्लिप्त प्रेम
जहर पीकर भी / स्वयं को
जिला सको

किसी लै-स-ला सा
आत्मसमर्पण / चाह / तुममे नहीं
मजनु के रक्त-लिप्त / जीर्ण-शीर्ण
गिरेवा मे / तुम्हे पाने का साहम
भूटा है ।

शीरी सा शील / सौन्दर्य / तुममे नहीं
प्रियजनो के वाण से / किसी को

प्रेम के देवता पर
बली बला सबी

बादो के रेगिस्तान मे
बादो की हौर-सी
तूम मुझे / दिगार्द नही दी
रतोमे / तदुलुहान-तनुषो मे / मैने
वई धार / भात-भाक पर देता है

पिर भी किसी दिन
बाबारा बदली-सी
जीवन के तपते मग्मथन पर
जायद / चरम गयो
तुम्हारा बदलता रूप
गावन का घटमान
दिला देना है
मरते जिम्म की
जिला देना है ।



□ कुमारो खुशाल श्रीवास्तव

अरण्य रोदन

कुकर मे बन्द कर
चढा दिया गया हूँ उबलने
गैस पर
अब स्थिति यह है कि
'फिरि फिरि मूजेमु तजहुँ न बारू'
ईसा तो एक हो बार क्रूस पर चढ कर
तीसरे ही दिन मुक्त हो गये थे—
अपनी पीडा से
पर मैं नित्य ही
अपना क्रूस कन्धे पर उठाये
जाता हूँ क्रूसीफाई होने
और फिर छिद्रित हाथ-पावो के साथ
सिर पर काटों का ताज
और हृदय मे ठण्डी ज्वाला ले
फिर लौट आना हूँ
अगले दिन फिर
सलीब पर चढने के लिये
कौन सुनता है
मेरा अरण्य रोदन

८



□ दुष्यन्त ध्यास

कोहरा

बूढ़ी देह से
धनचाहे
पुगने दूटे घाड़ने सी
चमपहीन
बृहरे मे ठके मूरज के सामने
चमगादड—सी
धनुभति हीन
यह सटक / दम तोडती किरण सी
कुण्ठाघो मे जीती
पषायं से टकराकर
टन मरी देह मे
ददं की
धनगिनत पगड्डियां मिला रही ॥



□ भगवतीलाल शर्मा

बुजुर्ग

मैं बुजुर्ग हो गया हूँ
वाल मेरे सफेद हो गये हैं
अब मैं बरसों से दबी इच्छा
पूरी कर सकता हूँ
किसी युवती को बेटी कहकर
आराम से सहला सकता हूँ ।



□ हरिश व्यास

आश्वासन

मंत्री महोदय ने
घपने उद्बोधन में कहा -
हम दस वर्षों में बेरोजगारी का
ममल घंत कर देंगे,
तभी दुसरे ने कहा
हम आगामी पांच वर्षों में
शिक्षा का माध्यम
पूर्ण हिन्दी कर देंगे
तभी हमने तपाक से
आदरणीय मंत्रीजी से कहा -
हुजूर
आप कितने बरम और
इस मंत्री पद पर
आसीन रहेंगे ।



□ बी० एल० अरविन्द

गजल

चेहरो के पीछे असली श्रीकांत छिपाये बैठे है
लोग यहा पर होठो मे कुछ बात छिपाये बैठे है
शक होता है हमको अपने घर आगन की नीयत पर
लोग यहा पर दीवारो मे घात छिपाये बैठे है
चाँद दबा है तहखानो मे सूरज बन्द तिजोरी मे
लाग उजालो के घोखा मे रात छिपाये बैठे है
खादी की चादर मे लिपटे है मखमल के व्यापारी
हंसो के घर मे कौग्रो की जात छिपाये बैठे है
कितनी वासी और कागजी यहा प्यार की परिभाषा
अभिवादन मे लोग विपले दात छिपाये बैठे है
आने वाले कल का मौसम कितना दर्द भरा होगा
लोग यहा पर ग्राँखो मे बरसात छिपाये बैठे है ।



□ अजुंन अरविन्द

उजली किरण के लिए

लोग

अफ़्राहों के पत्थर

फँस देते हैं रास्तों पर

राहगीर

टकराकर या ठोकर म्माकर

चौराहे पर ला पटकते हैं

फिर वहस के लवादे घोड़वर

बैठ जाते हैं

सुनमान तलहटी पर

जहा मिफं

अम के भ्रिगूर बोलते हैं

हम महज सपनों में टोलते हैं

एक दूसरे की जेब टटोलते हैं

साथ चलने वाले हर कदम का

शक की दृष्टि से देखते हैं

अंधेरे तले घँठकर

चरित्र जोअते हैं

छोटों को दबोचते हैं

रँगती संभावनाएं

उलझ गयी है

टकराव की भाड़ियों में

उजली किरण के लिए

ढेर से अंधेरे का निगलना होगा

सफलता की सीढ़ी चढने के लिए

बर्फ सा पिघलना होगा



नियति

अधेरे की बाहो मे भूलते
अनजानी सडक पर घिसटते
पहुच जाते है हम
खण्डहगे की गोद मे
या उदास पहाड की तलहटी पर
जहा घडकने नही उगती
सिर्फ खामोशी पसर जाती है
कसौटिया
पहचान की पगडडिया
दूर दूर तक कही नजर नही आती
और अहसास की नन्ही किरण
फूटते फूटते
सभावनाए थक जाती है
जिब्हाए उगलने लगती है
उदासिया
पहाड से टकराना
और धुए सा विखर जाना
निर्यात नही है
बेहतर है
हम परस्पर जुड जाए
एक ही घरातल पर चढ जाए
हम पहाड गिरा नही सकते
पहाड बना तो सकते हैं ।



□ अतिलेश्वर

तुम्हारे हाथ में

तुम

जो अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हो

और अपनी रिक्तता को

कल्पना के रंगों में भर रहे हो

शायद भूल गए हो कि

अवसर कभी आता नहीं

नाया जाता है

कि जैसे बुझा

प्यासे के पास नहीं

प्यासा कुंए के पास आता है ।

मैं नहीं कहता

कि तुम कुएं के पास जाओ

बुझां तुम्हारे हाथों की सर्जना है

उसे बनाओ

और उस तक आने वालों की प्यास बुझाओ ।

तुम देखोगे

तुमने अवसर की प्रतीक्षा नहीं की है ।

बल्कि अपने हाथों की शक्ति

समय के सूखे कंठ को दी है ।



रोशनी की खोज

रात लम्बी है

मुझे मालूम है

और सूरज के हृदय में

बादलों का भय

मुझे मालूम है ।
पर मेरे कसबे के वासी
दिवस की पहचान रखने हैं ।
किरन सूरज की न फूटे
और मुर्गा भी भले न बाग दे
ये जागने वाले
स्वयं के जागरण का
ज्ञान रखते हैं ।
मुझे मालूम है
हम रोशनी की गोज कर लेंगे ।
निशा निस्तब्ध हो चाहे
हम अपनी रिक्तता में
जागरण का
गीत भर लेंगे ।



□ रमेशचन्द्र भट्ट 'चन्द्रेश'

वनजारा जीवन

सुख की तलाश में
फूल भी जवानी,
उजाले की
चारादरी में
भटक गई है ।
घोर उसने तलाश कर ली है -
परेशानी,
उलझन,
चिन्ता,
निराशा,
बुद्ध और शंका
मन्देह और अभिमान
सतरे ।
मृत्यु
जो सभी नहीं समरे ।
और हम चौराहा पर ही भटक गये हैं
यानि कि हम भटक गये है ।
खानामदोशो की तरह ।



हम कितने बौने

इधर खाई है, उधर कुंआ है ।
हर तरफ फंला स्याह धुंआ है ।
एक धुंआ मे—
सिमटे कंद,

हो गये हैं अपने दायरों में ।
 सब मौन हैं
 अँस मसीहा से —
 लटके सलीब पर
 सूत्रे की तरह रटी—रटाई भापा बोलते है ।
 वे—तरतीब हुए डोलते हैं
 कुछ कर नहीं
 पाये जो जीवन में
 मच्छर की तरह ।
 यानि की एक अक्षर की तरह
 पूर्ण वाक्य भी न बन पाये —
 न जाने किस खेत के बधुआ
 की तरह समाज मे
 अँने—पँने हो गये है ?
 'चन्द्रेश' आज हम
 कितने बँने हो गये है ।



□ रामनियास सोनी

प्रश्न—नई व्यवस्था के

तम की यदि मूरज में मांठ-गांठ हो जाय
तो प्रकाश कौन करे ?

अंधेरे की चादर फँसाव की तरह फैली है,
दिशाएँ मोन हैं ।

सत्य की मशाल जलती जलती बुझ जाय
यह मुमकिन तो नहीं

मगर एक सभावित मत्य है ।

क्योंकि

असत्य आस चीराहे पर घूनी रमाएँ बँठा है ।

सभता के नाम पर

जय का उद्घोष कहा नहीं होता ?

आदमी भूल-भुलैया में फसा

स्वयं को सुलभाता है

मगर दूजे को उलभाता है ।

व्यवस्था के नाम पर क्या नहीं होता -

नई रूढ़ियों का पुनर्जन्म होता है

अच्छाइयों का अवमान होता है

और हर नया दिन एक नई सौगात लिए आता है

घोते से बही तो कभी

युग-मत्य समझ लिया जाता है ।



□ अशोक पन्त

सूरज की ऊष्मा और चाँदनी

यू मैंने भी कई बार चाहा था
इस चान्दनी को डिब्बे में कैद कर दूँ
ताकि अन्धकार में
मनहूस एकाकीपन का सामना कर सकूँ
पर यह महज मृगतृष्णा थी ।
ठीक वंसी ही
जैसे विना तेल के दिए के जलने की कल्पना ।
चाँदनी तो मुक्त है
उसे चाहिए खुले मैदान
विस्तृत सागर
चढने हेतु गगनचुम्बी छतें
और फैलने हेतु असीमित खुला-खुला आसमान,
वह अंधकार के दरवाजों को नहीं खटखटाती
चाँदनी एक कलकित मानव की उदारता सरीखी है
अन्यथा धरती चन्द्र के कलक से कभी की घिर गई होती
पर प्रश्न रह-रह कर उठ खड़ा होता है मन में
आखिर
सूरज के उजाले में
ऊष्मा ही ऊष्मा क्यों है ?
कई लोगों की जिन्दगी चाँदनी सी ठण्डी बनी हुई है,
तो बहुतों की जिन्दगी जलती हुई दोपहरी क्यों है ?
कितना अच्छा होता,
यदि चाँदनी के प्याले में
दो-चार बूँद सूरज की ऊष्मा डाल दी जाती,
फिर भी -

एक प्रश्न रह जाता है अनुत्तरित
 जो बार-बार हृदय को बेरहमी से उमेठे चला जाता है ।
 कि धातिर तपन भीर ठण्ड मे इतनी दूरी क्यों है,
 शायद
 जब तक जग की छाती मुनगाती रहेगी अनेक भद्रियां
 जब तक लोहे का कुछ भाग ठण्डा रहेगा,
 धातिर दहकते हुए प्रगारों की कथा
 पाँदनी के कानो मे कौन कहेगा ?



□ मनमोहन झा

वासदी

टी० बी० के मरीज-सा

सूरज/बेवस्त ही

कफियाने लग, है

वास मारता अधेरा

गुस्सैल / भवरदार हवाओं में

घायल कबूतरो की तरह

फडफडा रहे हैं / वजनी (?) करेन्सी नोट

रोटिया

उडन तशतरियों की तरह

अधेरे में/चक मत्र/उडती-उडती

ताड सरीखे दरस्तो पर/बैठ कर

मुह चिढा रही हैं

लँगडी/भयाक्रान्त भीड

हाथ ऊंचे किये चीख रही हैं

नपु सक चीखें ।

आह ! यह कुहरिल मौसम / और / परिवेश की/

वासदी !

ठीक-ठीक पता नहीं चलता

यह दिन है / या / रात ?

आदमी/प्रतिपल जो रहा है मौत / या

मर रहा है जिन्दगी ।



□ मोहम्मद सदीक

गज़ल

भीड़ बढ़नी ही रही पर आदमी घटता गया ।
पया सहर भाई बिनाग दूर तक कटता गया ॥
कौन मुट्ठी में दया सबता है सारी जिन्दगी ?
जब किरन फूटी अंधेरा आप ही छूटता गया ॥
मन के भीतर मादगी का क्या करे कोई इलाज ।
दर्द से टूटा मनस टुकड़ों में फिर बंटता गया ॥
जंगलों ने राह दी बस्ती को बसने भी दिया ।
बयूँ शहर से आदमी का आदमी हटता गया ॥
पाँव के पुन्ना दर्रादों से बनी पगडंडियाँ ।
हर समन्दर हाग कर खुद राह से हटता गया ॥
जब किसी ने उसने मौनी मर्न से पूछा सवाल ।
आदमी हो ? मर मुकाया, रो पड़ा, नटता गया ॥
मौसमी मुर्गों ने दे डाली अजाने पुरखतर
छोक कर उट्टा मुसाफिर राह से हटता गया ॥

गीत

चेचकिया सडकों पर
गिनती के घेरो में
बतियाती रेखाएं
गुमसुम अंधेरो में ।
धुनते हैं — बुनते हैं
सपने हैं—अपने हैं
आदम के डेरों में—गुमसुम अंधेरो में ॥

पगलाती पगडण्डी
 पीडा सहेली है ।
 झूलाती आशाए
 कितनी अकेली हैं
 पालें हैं -आखें हैं
 कितनी शलाखें हैं
 उगते सवेरो मे -गुमसुम अघेरो में ॥

पनघट की मर्यादा
 प्यासो की मजदूरी
 साधें सवालों की
 दर्पन से ही दूरी
 अपनी है प्यारी है ।
 दुनिया हमारी है
 अनजाने चेहरो मे—गुमसुम अघेरो मे ॥

अलसाये आगन मे
 मुरझाती बेलें हैं
 कोपल कुंवारी है
 अनगिन भूमेले हैं
 असुवाता हर पल है
 आहो की हलचल है
 उजड़ बसेरो मे -गुमसुम अघेरो मे ॥

आसू के अन्तर मे
 पीडा की पायल है
 सासो की सरगम का
 पंचम भी घायल है
 टुकडो को सीना है
 मरना है -जीना है
 सासो के घेरो मे -गुमसुम अघेरो मे ॥

दुल्हन की डोली है
फंघे बहारों के
इतनी तमन्नाएं
सपने बहारों के
साजन से मिलना है
बगिया का मिलना है
किनने लुटेरों में -गुमगुम भंधेरो में ।



□ पृथ्वीराज दवे 'निराश'

लाश

पहले वह
जिन्दा था
उसमे, हरकत थी
आकाशाए थी,
तूफान से लडने की
हिम्मत थी ।

अब वह पडा है
निर्जीव-सा
उसकी कल्पनाए
अब नही दौडती
उसकी रगो का लहू भी
किसी की अस्मत
लुटती देख कर भी
अब नही खोलता ।

क्या फर्क है (?)
उसमे और इसमे —
जिसे हम मरघट मे
दफना कर आते हैं ।



□ प्रमात 'प्रेमी'
यादों के खत

तुम्हारी यादों के
वैरंग खतों के
बना लिये हैं/मैंने
कुछ रंग-विरंगे / फूल
जिन पर जम गई है
तुम्हारी वफा की / धूल
और उग आये हैं / उन पर
तुम्हारी यादों के / काटे
जो मनजाने में
स्पर्श करने पर
भेंट करते हैं / एक
अनुपम रक्तिम उपहार
यही था ना /
तुम्हारा प्यार ?
फिर भी / उन्हें
सजा रखा है / मैंने
दिल के गुलदस्ते में
जब भी / तुम्हारी यादों में
खो कर / अतीत के खतों को
टेलीविजनी मानस पर्दे पर
अंकित कर / पढ़ने लगता हूँ
तभी / पलकों का पोस्टमैन
गिरा देता है / एक नया खत
मायूस हाथों / चुपके-से
सजा लेता हूँ / समझ कर / तुम्हारी
यादों का खत !

□ जनकराज पारीक

गज़ल

आजकल कुछ इस तरह लाचार हूँ बाज़ार मे
बिन जली तीली हो ज्यो बारूद के अवार में ।
ताब तो है फिर भी कुछ बेताब लगता है मुझे
बेवसी घर कर गई है दहकते अगार मे ।
जिंदगी और मौत का अतर सिखाऊंगा तुम्हे
में मसाले भर के रखा जा चुका हूँ जार मे ।
खो गया होगा कोई इस भौड़ मे, खोता रहे
मेरी ही तसवीर बयो छपती है इस्तिहार मे ।
होशियार दोस्तो परखूंगा अब मे दोस्ती
चार चावल ला रहा हूँ बाँधकर अखवार मे ।



□ भगवती प्रसाद गीतम

मेरे गांव में

दिन भर घूप पीते हुए,

अपने पावों से

खेत के ढेलों को ललकारते हुए

यत्न कितना जल्दी कट जाता है ।

फिर भी

लगता है कुछ नहीं हुआ

और धूल हो जातः है

घर लौट जाने का सिलसिला ।

सारा पसीना खेत में चुक जाता है

साथ चलती हैं बेबल यकन

उदासियों की बर्णमाता रटती हुई

बस्तियों की ओर -

मेरे गांव में

टिमटिमाते दीपों की रोशनी

स्याह अंधेरी से भी ज्यादा

भयानक हो चली है ।

चौखट पर पाव रखते ही

एक अदद दरवाजा

दोहराता है वही एक प्रश्न

‘आज क्या बनेगा ?’

और ऐसे ही अनेक प्रश्नों के

उत्तरों की खोज में

करवट बदलते हुए

रात भी ढलने लगती है -

फिर वही सुबह

वही घूप

वही खेत के ढेले ।



□ ब्रज भूपण नट्ट

रोशनी का विश्वास दे दो

माना तुम बहुत सुन्दर गीत रचते हो
माना तुम बहुत मधुर राग अलापते हो ।
मगर सोचा कभी अपनी कलम से -
कितना इन्सान का दर्द तराशते हो ? ॥१॥

प्यार को बदनाम करना नहीं चाहता -
याद को सपन-धूल कहना नहीं जानता ।
मैं, वासना का हूँ नहीं पुजारी, कविता
को अभिसारिका बनाना नहीं चाहता ॥२॥

इसलिये अब इस भाटी के गीत लिखता हूँ -
इसकी गद्य को शब्दों में अर्थ देता हूँ ।
इसको स्वर्ग मानकर गीता-गायक के -
स्वर्णिम मधु-सपनों को साकार करता हूँ ॥३॥

इसलिए अब राणा-शौर्य से काव्य भरदो-
नई पीढी को शिवा की हुँकार दे दो ।
राजाओं का हो चुका बहुत सत्कार -
श्रमिक को सिंहासन दे अमृत-अभिषेक कर दो ॥४॥

रूप की हो चुकी बहुत शृंगार व्याख्या-
कुरूप को पसीने का उपहार दे दो ।
कहाँ तक कहूँ हर बात आज साथी -
हर इन्सान को रोशनी का विश्वास दे दो ॥५॥



□ नमोनाथ अथस्यो

हस्ताक्षर फेर गया

टूटते हुए पानी का दर्पण

पारा-पारा हुआ

धूप ने

तालाब का माथा छुआ ।

घाटा पर डूब रहे धु ध के विनारे

घोर रूटे वन पांखो सूने भिनसारे

जाग रहे चदन-वन

अलसाई नीदो स

बोल रहा अन्दर का

अधा -सा गुआ ।

पतं दर पतं कुहरा विसरा शंवालो पर

हस्ताक्षर फेर गया कोई तालाबो पर

नहरो मे लौट चले

सवदन अनब्याहे

माटी मे फँस रही

कलमु ही-सी

बद्दुआ ।



खो गये सवादों का मूल्य

जब से मूर्य का नाम विद्युत् पडा है
जब से हग हुई है आबसांजन
और आदमी के भीतर पैदा होने लगे हैं
जोन्स

हुआ यह है कि
पुराने संवादो का सिलसला टूट गया है
पहाडो ने उडना छोड दिया है
और नीम के पेड ने हकीमपना भी
चीसठ बक्तियो वाली हेम कवर रजवती भी
नही बोलती है आजकल कोई भेद ।
चीपालो पर दोहे और
अलाबो पर चीपाइयो ने अपना अस्तबल उठाकर
डाल दिया है अघेरी बंद कोठरी मे
हुआ यह है कि

दीवालों के कानो मे जड गया है
पिघला हुआ शीशा
रानी केतकी ने भरी सभा मे बैठकर
फंसला करना छोड दिया है
और सारी-सारी रात
मकानो ने लटका लिए हैं जबानो पर ताले
चारो तरफ धु ध ही धु ध छापी है
लगता है जैसे -
कोई नगर उजड गया है
और किसी ने भरे जगल मे बैठकर
भैरवी गायी है ।



धूप का चक्रव्यूह

धुम्-धुम् में लगता है
आफान थड़ा साफ है
पक्षी घोंसलो में घड़े देते हैं
और मौमम जैसे किसी
कोरी स्लेट पर चँटकर लिखना भोग रहा है
परिभाषाए

लेकिन -

जैसे-जैसे बढ़ता है अघ्याय
और कथाएँ होती हैं आरम्भ
धीरे-धीरे फँसने लगता है धूप का चक्रव्यूह
बादल समेटने लगते हैं अधियारे के पहाड़
तो मालूम देता है कि

राम्ता बहुत साफ नहीं है
और गुफाआ में बंद कर लिया गया है
कोई महासूर्य

तब हम सब लोग देखने लगते हैं
दोनों हाथों के ब्रह्मांड को

ब्रह्मांड वह -

जिसे पत्तों से बनाया जाना है
इतिहास का आधार है जो
और आदमी जिसके पास जाकर

सुस्ताता है ।



□ महेशचन्द्र वर्मा

सुबह का सूरज तो आयेगा ही

अधेरी रात के
भूत को भगाने
भटकते हुआ को
राह दिखाने
अपने को
अपनी को
उजाले में रखने के लिए
एक साथ बैठा कर
समझा-बुझा कर
नये जीवन की शुरुआत करने
कल ही तो तुम्हें
रात का नया सूरज दिया था ।
तुमने उसे
तोड़-फोड़
काट-छाट
परस्पर बन्दर बाट कर
रोशनी समाप्त कर दी
इन अट्ठाईस महीनों में
सूरज के गोले की जगह
मिट्टी का ढेला बना दिया ।
अब तो ! पुरातन की ओर ही लौटना होगा
उसी
तीस साल पुरानी लालटेन का

सहारा लेना होगा
 जिसरा गोला
 टूट चुका है
 फिर भी, यदि,
 एक बार बत्ती जल गई तो
 उसमें तूफाना से लड़ने की हिम्मत
 अब भी बाकी है ।
 विद्वत्-पियस से
 टूट गोलों को जोड़
 राशनी देन में समय हाँगो
 मूरज तो नहीं होगा
 न सही
 रोशनी तो होगी ही
 अ घेरे में पेठा को
 चलने का
 सम्बल तो मिलगा ।
 अन्यथा
 अत्यंत गहरे अन्धकार में
 वही भी चोर घुम आयेंगे
 वर्षों की मेहनत को
 य़ ही उठा ले जायेंगे ।

कुत्ता की तरह आपस में भो-भा करने वाला
 समय के रहते
 अपने को पहचानो
 इन्सान हो,
 हेवानियत से बचो
 अब भी समय है

समझो, सोचो और कुछ कर डालो
सूरज न सही
लालटेन ही को अपना लो
विश्वास रखो
सुबह का सूरज तो आयेगा ही ।



□ मोटासिंह बल्ला 'मृगेन्द्र'

गीत

हटो भी निन्दिया, रतजगे की रात पर
कोई गीत सावन को लिखने दो ।

चमती चपला
हायरो घबला
कौन ले रहा
बंरन बदला

ठहरो, मत शोर करो विफल वस्तु की सांसो पर
कोई गीत सावन को लिखने दो ।

बहुका पवन
पडौस घ गना
छन-छन छनवा
फिसल गगना

चन्द्रिका उस और न जा इस नेह मेह पर
कोई गीत सावन को लिखने दो ।

पाखी बलरव
साभू मुहानी
दोहराती जाती
बल की कहानी

न बहवो घ धियार, घतियाते मौसम की तरुणाई पर
कोई गीत सावन को लिखने दो ।

चुप री चन्द्रिका
चुप रे चन्दा
फिर ले आया
व्यग्य चुनिन्दा

विकल वेदना, विरह वरत की काली पाखो पर
कोई गीत सावन को लिखने दो ।

□ सोहनलाल प्रजापति

राजनीति

एक

कुछ व्यक्तियों के लिए
आज की राजनीति
उलझे वालों का गुच्छा है ।

उलझे बाल
सुलझने पर भी
नहीं सुलझते ।
हार कर उन्हें बेमन से
तोड़कर फेंकना पड़ता है ।
और उपाय ही क्या है ?
उलझे बाल
व्यक्तित्व को
कुण्ठित करते हैं ।

प्रपंचना पूर्ण
कुत्सित राजनीति
उलझे मसले
चेष्टा करने पर भी
नहीं सुलझते ।
समझदार नेता उसे बेकार समझ
सत्यास ले लेता है ।
बेकार के बोझ से
हल्का हो जाता है ।

दो

पर, बुद्ध के लिए
आज की राजनीति
उलभे बालों का गुच्छा नहीं
अघोरी साधु की उलझी लकी लट्टें हैं ।

लकी छोटा जमो लट्टें
सुलझाने की चेष्टा करने पर भी
सूलभती नहीं
काटी जा सकती नहीं

वयोवि साधुत्व की निगानी है ।

जीवनयापन एवं
लोगों को धोखा देने का
साधन है ।

व्यक्तित्व निरार
एवं लोक-प्रिय बनने का
चेजोड बहाना है ।

अघोरी साधु
जिन्दगी भर
उलझी लट्टों का भार
बड़े चाव से ढोना है
अन्त में उसी के साथ
आग में जल कर
अस्तित्व खोता है ।



□ कैलाश 'मनहर'

गीत

दोस्त / आंसू बने,
दर्द / बहते रहे,
आंख से / नींद की
दुश्मनी हो गयी.....

अपने जूतों की / कीलें,
तुम्हे / क्या चुभे ?
य / भभकते हुये / पेट .
कैसे बुझे ?

वो बरसते रहे /
हम / तरसते रहे.
वात / बेवात थी / पर
हँसी हो गयी.....

बोटिया / जिन्दगी की भी
छोड़ी नहीं,
न खुली / न सही
गाठ तोड़ी नहीं.....

चांदनी मे / जहर,
ढो / सो / रहा है शहर,
आज
अनजाने मे
खुदकुशी हो गयी.....



काविता

यगंत को बंद करना /
बहुत मुश्किल है / दोस्त
घोर फिर /
मौमभी नदी के उफान को
बामू की दीवार से / रोकना.....

तुम धोमे में हो / भाई—
जि गून को / रंगो में बाट रहे हो
जबकि
गिरगिट / इन्मानो में होते हैं.....

रात
घ घेरे की नहीं / यत्कि
धोखे के उजाले को है
क्योंकि
बिजली / घनेकों के घर उजाड़ जाती है /
दसलिये
मौमम का कहना मानो / मेरे भाई
बसत को आजाद कर दो / घोर
नदी को कटाव बनाने दो ।
रंगो को / गून से मत मिलाओ / मेरे दोस्त
आदमी पर बिजली नहीं
पहचान बनाने योग्य / प्रकाश डालो —
क्योंकि
दर्द का एहसास ।

श्री एव-सा होता है....

□ रश्मि गुप्ता

दो कविताएं

लकड़ी के चौखटे में कसा कैनवास,
उस पर बेतरतीबी से खींची गईं
लकीरे, आड़ी-तिरछी,
इन्द्र-धनुषी रंगों के अभाव में
रीति ही रह गई,
आधुनिक शिल्प की संज्ञा से
विभूषित हुई.....
एक चित्र प्रतियोगिता में ।



मुंह का कसैला स्वाद
अब स्थाई हो गया है,
कि हर स्वाद का एक ही
रंग हो गया है
कारण ढूंढने की कोशिशों,
हर बार असफल रही ।
याद नहीं आता कि -
आखिरी बार क्या खाया था ?
दु ख का तीखापन ! या चखा था
जिजीविषा का फोकापन ?



□ नगवतीलात व्यास

अप्रैल उत्तरार्ध को एक आदिवासी नाज

उतरी है गांभ फिर
घाफानी घटारी में
पहाड़ों की गोदी पर पाव धर ।
ये नगे पहाड़
उटो के वाफिलो जैसे
भई-यसो पेठ उन पर खड़े ऐसे
वाम ज्यो उह जायें पूरे
गिया तीनी घौ' नुकीनो पीठ के ।
दीठ के विस्तार तक
बीनी दिनाए मोन
ज्यो सवेदना-नी ।
कभी अपने युवा क्षण में
ठाठें मारती, कृतकारती
यह पहाड़ी नदी
लेटी इस तरह निम्पद
अन्तिम क्षण गिने
ज्यो रोगिणी कोई ।

⊙

मलिहान के चक्कर में
चक्कर लगा दिन भर
यके ये गऊ जाये पाव
रह-रह पूछते हैं
और कितना और ?
हाथ की सटी संभाले

एक ममता प्राण
थूक अपना गिटक कर
टिटकारता—कहता—
सूरज ढले तक और
पुत्रो, सूरज ढले तक और ।

⊙

और वह जो छोर दिखता है
यहा से धूल-धूमर
लोग कहते बन रहा है
वहा कोई बाध
जिम पर कर मजूरी
लौटते कुछ पाव नगे
हाथ मे लकर कुदाली
माथ पर धर कर तगारी
पैदा चिलकता जिसका
विदा होते सूर्य की यह
रोशनाई लाल
माडती है थके चेहरो पर
फिर कई सवाल
एक इनमे यह
कि ठेकेदार ने कम कर दिए है
दस जने कल काम पर
दस जनों का सूर्य
कल किस दिशा से ऊगे ?
है नही उत्तर किसी के पास ।

⊙

धु आ उठता है
टपरियो से, कुछ यहा से
कुछ वहा से
मसमसाये अघजले उपले
सिकी और अघसिकी

सब रोटियों की गन्ध
 पूरी पहाड़ी पर फैलती है
 घोर लगता है कि जैसे
 अभी थोड़ी देर में
 गुलगने लग जायेगी पूरी पहाड़ी
 भूम्य से
 किन्तु यह लगना
 कभी पूरा नहीं होता -
 काश यह होता !
 प्रति सांभ ऐसे ही घु घ्रा होना शान्त
 शांत होती पेट की वह भाग
 चांद रीती हडिया-सा
 इसी तरह टंग जाता रोज
 इससे कुछ अधिक नहीं
 हुआ इस पहाड़ी पर घोर ।

⊙

पीपल के दूध-सी
 गंधाती देहयष्टि घादिम यह
 अल्हडता निरावृत्त
 अपने में मगन और
 समय के सर्प से निश्चिन्त
 रोगता जो बगल में उसके
 ऐसी निर्वाक दृष्टि
 और वहां पाओगे ?
 कवि मेरे, ठहरो कुछ क्षण
 कुछ पल इन वियाचानों में
 फूस के मचानों में
 इस सूखे कुएँ पर लगे हुए
 जर्जर रहट की पाटी पर
 बँठ कर लिखो भी कोई महाकाव्य
 अपना यह धूप का चश्मा

अब तो उतार दो
 देखो तो, यहा कही
 काच की किरचें नहो बिखरी हैं
 सब और माटी ही माटी है
 श्यामल-कोमल मनुहार भरी
 माटी यह चुभन नहीं देती रे
 अलवत्ता तुम्हारे अन्तस को
 अपने रग मे रग लेगी रे
 जो तुम्ह पसन्द नहीं
 तुम्हारे काव्यशास्त्र मे क्या कही
 माटी का छद नहीं ?
 पर सुन लो
 काव्य नहीं इससे रुक पायेगा
 यह जो उतरी है साभ इस वस्ती पर
 बाभ नहीं
 तुम नहीं लिखोगे तो
 कोई और लिख जायेगा ।



□ माध्य नागदा

तलाश

आज हर कोई
अपनी टूटी जिन्दगी के बिगरे सण्ड
जोड़ने में लगा है
आज हर किसी के दर्दोंले होठों पर
मदियों से चला आ रहा एक ही नारा है -
संसार अमार है
जीवन निस्मार है
आज का मनुष्य जी नहीं रहा
जिन्दा रहने की चिन्ता को बंद ही तरह
हो रहा है ।

मैं तलाश में हूँ ऐसे व्यक्ति की
जो ललकार कर कह सके
मैं हंसते हुए मर सकता हूँ
मैं जीवन की सागी कृष्णो और सदासो के मध्य
हसते हुए जी सकता हूँ
मैं जीवन की निस्मारता को निचोड़कर
आनन्द की बूँद दे सकता हूँ ।

जिस दिन ऐसा मानव
जो मरने की कल्पना पर मस्कुरा सकता है
जो जीवन की वितृष्णाओं में रस ले सकता है
मेरे मन के आगम में प्रवेश करेगा
मेरी कलम से
एक नयी कविता का जन्म होगा
एक नयी कहानी का उदय होगा ।



□ निशान्त

यथार्थ

अत्याचार के विरोध में
उठाएं पत्थर
या अत्याचारियों के
चगुल में ही न आए
कहा है ऐसी
इस देश की
अधिकांश जनता ?

यहाँ के लोग तो हैं ऐसे
कसाइयों-से
आदमियों के हाथ में
देकर अपनी चोटी
रिखते हुए
करते हैं बिनती
'मालिक जरा दया करना
चोटी ज्यादा न खीचना ।



□ धरनी रायट्स

हकीकत

धब में

किसी गुनो में शामिल नहीं होना ।

मय्यती धीर शवयात्रा में

जाना मेरा नियम हा गया है ।

गुनियो को भोग पाना,

मुझ जैसे गदित इमान पे लिये

मुश्किल है ।

गुदी हूँ कयरे देगवर या

गजी हूँ चिताये देगवर

बडा सनून-सा मिलता है ।

शवयात्रा में शामिल,

उदास चेहरे, जिन्दगी के काफ़ो

करीब नजर आते हैं ।

धर्या पर लेटा पायिव शरीर

जिन्दगी की फिलॉस्फी का

छोतक होता है ।

सुहाग की चूडिया तोडती

स्त्रियां बिलखते बच्चे या

मा-बाप के निस्पंद शरीर से

लिपटवर रोते बच्चे

जिन्दगी की हकीकतें लगते हैं ।

किसी खुशी को ढो पाना,

बडा बेहूदा लगता है मुझे,

किसी बच्चे की पैदाइश पर ही

मैं उसकी मौत की

कल्पना करने लगता हूँ ।

हर आरम्भ का अंत मुझे
 सच्चाई लगता है ।
 आरम्भ तो महज अंत तक
 पहुंचने का एक सिला होता है ।
 लाश जब फु कने लगती है
 तो पछताता हू यह सोचकर
 कि वहा मैं क्यों नहीं हुआ ?
 शायद वहा होने की
 उम्मीद लिये ही जी रहा हू ।
 वही मुझे हकीकत नज़र आती है ।
 इसलिए अब मैं
 किसी खुशी मे शामिल नहीं होता
 मय्यतो की बारातो मे
 मौजूद रहता हू !



□ अजीज आज़ाद

गज़ल

जैसे हर सास में एक उम्र मटी जाती है
जिन्दगी नींद सी पलकों में दबी जाती है ।

कंपकपाती हुई वो याद की ठंडी सी लकीर
क्यों मेरे जहन में घातो है चनी जानी है ।

इस नदी की जो बहती थी उफनती थी बहुत
मेरे आसू की तरह अब ता बही जाती है ।

देख मुझे हुए पत्तों का मुलगना क्या है
पूरे जगल की तरफ आग बढी जाती है ।

उफ़ अंधेर की तडप देग सुराया के करीब
बिग तरह रूप भी चेहरों पे मली जाती है ।

•

हम रोज शिकायत के अलफाज उगलते हैं
फिरदार के मुद्दे पर कमजोर निकलते हैं ।

हुक्काम से ममझीता दावा है बगावत का
दस्तूरे-बफादारी हम खूब समझते हैं ।

जब जब भी तलाशे हैं बरगद ही तलाशे है
हैं जहन में ठडापन जजवात सुलगते है ।

भरनों के तले बंठे टीलो का भरम लेकर
हैं आच की अगुवाइ साये से भुलसते हैं ।

न सच की तरफदारी न भूट से शिकवा है
मुंह देख के लोगों का हर बात उगलते हैं ।

मुजरे की अदा लेकर सरकार से शिकवा है
गजरे की तरह हमको क्यों आप मसलते है ।



□ देवेन्द्र पुमारी मिथा

गज़ल

ददं बन जाये अगर नामूर तो क्या कीजे
मोगम भी दे जाए दगा तो क्या कीजे ।

दफनाके सुहाने सन्हों का तावूत
पुभाये नस्तार कोई तो क्या कीजे ।

हमने तो सगा नियो धे जम्हां पे पंदन्द
गिस भाये अगर गून तो क्या कीजे ।

समन्ना धी लिंगने की हरफ उजले
बिगार जाये अगर रोसनाई तो क्या कीजे ।



□ रामस्वरूप परेश

गजल

रोज ही जीता रहा मरता रहा हूँ मैं
उम्र का दामन रफू करता रहा हूँ मैं ।

हर खुशी अपनी कि अपना हर जवा सपना
जिन्दगी के कर्ज में भरता रहा हूँ मैं ।

गध देकर गर्द ही पाई जमाने से
वक्त को सब कुछ नजर करता रहा हूँ मैं ।

पहाडों के सामने निर्भय खड़ा होकर
आधियों से सन्धिया करता रहा हूँ मैं ।

क्या सुनाऊ मैं तुम्हें गन्तव्य की बातें
रास्तों में ही सफर करता रहा हूँ मैं ।

अब तुम ही मुझ को दाव पर धरने लगे
दोस्तों से इसलिये डरने लगा हूँ मैं ।



□ धनुं न 'धरविन्द'

गजल

एत पर मुन्वाई एत शाम घोर
देह कसमगाई एत शाम घोर ।

भाज तेरे धनवहे दरादा की
गध चलो घाई एत शाम घोर ।

घायो के जगल म धनुगाग की
नदिया सहराई एत शाम घोर ।

गूने आवाज में चचल मुनहरी
पदरी गहराई एत शाम घोर ।

सपनो के डंनो में मदमस्त-मी
आकर टहराई एत शाम घोर ।

मन की रिताय के रिक्त हाशिए पर
मौत उतर आई एत शाम घोर ।



□ लालचन्द सोनी

शिक्षक दिवस

एक समय की बात
मैं जा पहुँचा
सिगल टीचर स्कूल मे
अपने एक मित्र के साथ ।

अध्यापक जी एक छात्र को
कुछ लिखवा रहे थे
अपनी तारीफो का पुल बघवा रहे थे
यह सब उसे तोते की तरह रटवा रहे थे
भूलने पर दो-चार चपत भी जमा रहे थे ।

मैंने पूछा सर यह क्या हो रहा है
कही किसी कम्पीटिशन का रिहसॅल
तो नहीं चल रहा है ?
वे तपाक से बोले
तुम चुप रहो
मैं अपने कर्तव्य का निर्वाह कर रहा हूँ
बडी सच्चाई व ईमानदारी से
सरकारी आदेश का पालन कर रहा हूँ
कल शिक्षक दिवस है
छात्र को अपने सम्मान में बोलने
एक भाषण तैयार करवा रहा हूँ ।



□ बरबर मेवाड़ी

मुक्ति पर्व

दोस्त

तुम आज भी ऊंची घागाज में चीमते हो
जबकि तुम जानते हो
तुम्हारी घागाज का घोर तुम्हारा
अब कोई महत्व नहीं है ।

मैं जानता हूँ

तुम बहुत ज्यादा महत्वाकांक्षी हो
घोर हर बात को अपने पक्ष में
मोड़ लेने की शक्ति रखते हो
फिर भी
तुम कभी नहीं कर पाओगे
हर क्षेत्र में अपना अधिपति ।

शायद तुमने सोच लिया है

कि मैं तुम्हारे पिछले कारनामों को
भुला बैठा हूँ
पर यह तुम्हारी ना-समझी है मेरे दोस्त
याददाश्त की सतह पर
बुद्ध भी नहीं भुलाया जा सकता
शायद तुम्हें मालूम नहीं ।

तुम ने जिन अन्धेरे खण्डहरों में
घबेला दिया है हमें

वहा से लौट पाना कितना कठिन हो गया
कितने बेवस हो गये है दिन
कितनी बोझिल और उदास हो गयी है शामे
अन्धेरा इतना घना है
कि रोशनी का एक शहतीर भी
बरसो तक नही पहुँच सकता हम तक।

फिर भी हम प्रतीक्षारत है
कि कभी न कभी
उन अन्धेरे खण्डहरो तक कोई सडक
अवश्य आयेगी।

किसी न किसी दिन
सूरज का प्रकाश
उन खण्डहरो तक जरूर पहुचेगा
और हम
उन अन्धेरे खण्डहरो की कैद से
आजाद हो जायेगे
और वह दिन
हमारा मुक्ति पर्व होगा
जब तक वह दिन नही आयेगा
तब तक हम उस दिन का इन्तजार करेगे।



□ अर्जुन 'धरविन्द'

सुखद यात्रा

हवाओं को
मृट्टियों में बंद करना चाहते हैं ।
लोग
दिशाओं को नाप लेना चाहते हैं
अंगुलियों के पौर में
समय के मदर्भ में चुब जाते हैं
रेत पर इतिहास लिखने में
जिदगी के दायरे
समेट लेते हैं
पुंसियों की पीठ पर
भ्रूख से चिल्ला रही
वे-जान पीढी को
घाट देते हैं चंद आश्वासन के टुकड़े
पसर जाती हैं
धरातल पर दोगली स्थितिया
आओ
इसी मोड़ से एक सुखद यात्रा शुरू करे
सभी फिरको से दूर
नई समावनाओं को उगाए
अंधेरे की बाहो में
सोये सूरज को फिर से जगाए ।



सम्पर्क सूच

- | | |
|----------------------------|---|
| 1 शक्तिशाली शर्मा | प्रधा, रा बाबिका मा वि गौरवाडा (उदयपुर) |
| 2 बजमूरार मट्ट | प्रधा रा मा वि वीरनडा (मवाई माधोपुर) |
| 3 तांवर वदया | अध्यापक जन रोड, बीकानेर |
| 4 पुष्पवता शरदप | म अ रा पडा उ प्रा क-ग वि पायटा, जोधपुर |
| 5 गिण 'मृदुल' | रा. उ. मा वि चित्तोडगड |
| 6 चतुर कोटारी | कोटारी पदन बडा पाडा राजतमर (उदयपुर) |
| 7 अमरतिह पांडेय | अध्यापक, भूवावर (सरनर) |
| 8 चंनराम शर्मा | प्रधा रा उ प्रा वि मावनी (उदयपुर) |
| 9 मगरचन्द्र बने | म अ रा मा वि हार्जी (जावीर) |
| 10 रामरघुव परेश | गठ वीरामल उ भा वि गगड (भुङ्गु) |
| 11 वृन्दनातिह सजस | म. अ, रा मा वि. रायपुर, पाटन (मीवर) |
| 12 मन्वजिगोर चतुर्षेदी | पाण्टुटा, पाया बंगू (चित्तोडगड) |
| 13 धीनदन चतुर्षेदी | बजाजवाता, पटापर, डावानवाडा, कोटा |
| 14 प्रभात 'प्रेमी' | म अ, रा उ प्रा. वि, खेवा (बांसवाडा) |
| 15 रमेश मयक | म अ रा मा वि धारनी (चित्तोडगड) |
| 16 तावित्री परमार | श्रीमहावीर दि जैन उ मा वि, जयपुर |
| 17. ध्यानंद कुरमी | मैत्रि वैदिक विद्यालय, झुगरपुर |
| 18 दीपचंद्र गुपार | म अ रा उ प्रा वि, न० 1 भेडवा सिटी (नागौर) |
| 19. दुष्पंत श्याम | द्वारा-डायाबाज जाशी, सिगवाव मार्ग बरमगडा |
| 20 अशुल मलिक तान | म अ प्रा वि गुराडियामाना, भालरावाटन (भालावाड) |
| 21 नमोनाथ अक्षयपी | कोटावली, मेहला (मवाई माधोपुर) |
| 22 बाबू हंसमुख | भारतीय न्यू बानोनी, मनोहरपुर (जयपुर) |
| 23 विप्रमतिह गुडोज | बांसवनी विद्यालय जोधपुर |
| 24 रमेशचंद्र शर्मा 'इन्दु' | म अ, रा मा वि, लोह बाया रोनीजाथान (अलवर) |
| 25 कमला शर्मा | प्रयाग कुटीर, नई लाईन, गगाणहर (बीकानेर) |
| 26. कमर मेवाडी | चादपोल, बाकरोली (उदयपुर) |
| 27 गिरीश विद्मोही | रा बाबिका मा वि, राजनगर (उदयपुर) |

28 फतहलाल गुर्जर

29. चुष्ठीलाल भट्ट

30. भूपेन्द्र अग्रवाल

31. जनकराज पारीक

32 प्रकाश नारायण तनिक

33. कुमारी खुशाल श्रोवास्तव

34. भगवतीलाल शर्मा

35 हरीश व्यास

36. बी एल अरविंद

37. अर्जुन 'अरविंद'

38 अखिलेश्वर

39. रमेशचंद्र भट्ट

40 रामनिवास सोनी

41. अशोक पंत

42. मनमोहन झा

43 मोहम्मद सदीक

44 पृथ्वीराज धवे

45 भगवतीप्रसाद गौतम

46 महेशचंद्र वर्मा

47. मोर्डीसिंह बल्ला

48 सोहनलाल प्रजापति

48 कैलाश 'मनहर'

50 रश्मि गुप्ता

51 भगवतीलाल व्यास

52 माधव नागदा

53 निशांत,

54. अरनी राँबट्स

55 अजीज अजाद

56 देवेन्द्रकुमारी मिश्रा

57 लालचंद सोनी

स. अ., रा. उ. प्रा. वि., प्रथम, काकरोली
(उदयपुर)

जेठाना (डूंगरपुर)

रा. शि. प्रा. (महिला) वि., बीकानेर

प्रधा., ज्ञानज्योति उ. मा. वि., श्रीकरणपुर

(गगानगर)

रा. उ प्रा वि., जाजोता बाया रूपनगढ़

पीरामल उ मा वि., बगड (भु भूतू)

प्रधा, उ. प्रा. वि., सेमलपुरा (चित्तौड़गढ़)

गोपालगज, प्रतापगड (चित्तौड़गढ़)

रा मा. गांधी उ. मा. वि., रामपुरा, कोटा

काली पल्टन रोड, टोंक

30 मडो ब्वाँक, श्रीकरणपुर (गगानगर)

मोहल्ला नीमघटा, डीग (भगतपुर)

कालीजी का चौक, लाडनू (नागौर)

रा उ. मा वि, भरतपुर

प्रधा, रा मा वि., खमेरा (वासवाडा)

प्रधा. रा. मा वि., उदासर (बीकानेर)

रा उ प्रा. वि., जीवाणा, बाया बागोडा (जालोर)

रा उ मा. वि., भवानीमडो (झालावाड)

रा राजेन्द्र मा. वि, अजमेर

रा. मा. वि, यडा, बाया धमोतर (चित्तौड़गढ़)

प्रधा. रा उ. प्रा. वि, आवसर, बाया पडिहारा

(चूरू)

स्वामी मोहल्ला, मनोहरपुर (जयपुर)

स. अ., रा. उ. प्रा वि., मेनसर, नोखा (बीकानेर)

लोकमान्य शि. प्रशि महाविद्यालय, डबोक

(उदयपुर)

रा. उ. मा. वि, चावण्ड (उदयपुर)

द्वारा. हृदिकृष्ण सूरजभान, पीलीबंगा (गगानगर)

रा. उ. मा. वि., रामसर, बाया नसीराबाद (अजमेर)

मोहल्ला चूनगरान, बीकानेर

रा. बालिका मा. वि. रीगस (सीकर)

रा. उ. मा. वि, वारा (कोटा)

शिक्षक दिवस प्रकाशन

[सत्राणं सूची]

1967 : 1. प्रस्तुति (कविता), 2. प्रस्थिति (कहानी), 3. परिक्षेप (विविधा), 4. सावित्र ए गोहर (उद्गं). 5. बार की दावत (उद्गं)

1968 : 6. कंसे भूतू (संस्मरण), 7. सप्तियेश (विविधा), 8. बामाने बागडी (उद्गं)

1969 : 9. प्रस्तुति-2 (कविता) 10. बिम्ब-विम्ब घाँवनी (गीत), 11. प्रस्थिति-2 (कहानी), 12. अमर घूनडी (राजस्थानी कहानी), 13. यदि गांधी शिक्षक होते (निबन्ध), 14. गांधी-दशमं घोर शिक्षा 15. सप्तियेश-बो (विविधा)

1970 : 16. सुला गाँव (गीत), 17. लिडकी (कहानी), 18. कंसे भूतू-बो (संस्मरण), 19. सप्तियेश-सीन (विविधा)

1971 : 20. प्रस्तुति-3 (कविता) 21. प्रस्थिति-3 (कहानी), 22. सप्तियेश-4 (विविधा)

1972 : 23. प्रस्तुति-4 (कविता), 24. प्रस्थिति-4 (कहानी), 25. सप्तियेश-5 (विविधा), 26. माळा (राजस्थानी विविधा)

1973 : 27. धूप के पनेह (कविता), 28. लिललिमाता गुलमोहर (कहानी), 29. रेगमारी का रोजगार (एकांकी), 30. अस्तित्व की खोज (विविधा), 31. जूनां घेली नुवां घेली (राजस्थानी विविधा)

1974 : 32. शोशनी घाँट बो (कविता) स० रामदेव घाँवायं, 33. अपने घाँस-घाँस (कहानी) स० मणि मधुकर, 34. रङ्ग-रङ्ग बहुरङ्ग (एकांकी) स० डा० राजानन्द, 35. घाँधी घर घाँसघाँस ब० भगवान महावीर (दा राजस्थानी उपन्यास) स० यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', 36. बारखडी (राज० विविधा) स० वेद व्यास

1975 : 37. अपने से बाहर अपने मे (कविता) स० मंगल सक्सेना, 38. एक घोर अन्तरिक्ष (कहानी) स० डा० नवलकिशोर, 39. संभाळ (राजस्थानी कहानी) स० विजयदान देवा, 40. स्वर्ग-भ्रष्ट (उपन्यास) स० भगवती प्रसाद व्यास, स० डा० रामदरश मिश्र, 41. विविधा स० डा० राजेन्द्र शर्मा

1976 : 42. इस बार (कविता) स० नन्द धतुर्वेदी, 43. सकल्प स्वर्गों के (कविता) स० हरीश भादानी, 44. बारगद की छाया (कहानी)

स० डा० विश्वम्भरनाथ उपन्याय, 45 चैत्रों के बीच (कहानी व नाटक)
स० योगेन्द्र विमलय, 46 माघ्यम (विविधा) म० विश्वनाथ सचदेव

1977 47. सृजन के घायाम (निबन्ध) म० डा० देवी प्रसाद गुप्त,
48 वर्षों (कहानी व लघु उपन्यास) स० श्रमण कुमार, 49 चेतने रा चित्रराम
(राजस्थानी विविधा) म० डा० नागयण मिह भाटी, 50. समय के सन्दर्भ
(कविता) स० जगमन्दिर तायल, 41 रङ्ग-चितान (नाटक) स० सुधा
राजहूम

1978 52 अंधेरे के नाम सवि-वप्र नहीं (कहानी सफलन) स०
हिमाशु जोशी 53 लखाल (राजस्थानी विविधा) स० रावत सारस्वत,
54 रचेगा सगोत (कविता सफलन) स० नन्दकिशोर आचार्य, 55 दो गाँव
(उपन्यास) ले० मुकारव सान भ्राजाद स० डा० भादशं सक्सना, 56. अभि
व्यक्ति की तलाश (निबन्ध) स० डा० रामगापाज गायल

1979 57 एक शब्द आगे (कहानी सफलन) स० यमता कालिया,
58. लगभग जावन (कविता सफलन) स० लीलाधर अगुडो, 59 जीवन यात्रा
का कोलाज/न० ? (हिन्दी विविधा) म० डा० जगदीश जाशी, 60 कोरणी
फलम री (राजस्थानी विविधा) स० अन्नारान मुदामा 61 यह किताब
बच्चों की (बाल साहित्य) स० डा० हरिकृष्ण देवगरे

1980 • 62 पानी की लकीर (कविता सफलन) स० अमृता प्रीतम,
63 प्रयास (कहानी सफलन) स० शिवानी, 64 मजूपा (हिन्दी विविधा)
म० राकेश जैन 65 अतस रा आसुर (राजस्थानी विविधा) म० डा० नृसिंह
राजपुत्रोहित, 66 खिलते रहें गुलाब (बाल साहित्य) स० जयप्रकाश भारती

□

शिक्षक दिवस प्रकाशन 1979

⊙ समीक्षकों की नजर में ⊙

यह किताब बच्चों की शिक्षकों द्वारा लिखी गयी रचनाओं का संग्रह है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि छात्र या शिक्षक समाज, बच्चों के मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए उन्हें आधुनिकतम देग प्रेम, सहनशीलता या सगन की शिक्षा देने तथा उन्हें नवीन जीवन के मानदण्डों से जोड़ने के लिए विशेष उत्सुक है।

—नवभारत टाइम्स (नई दिल्ली), 30 दिस, 79

हम इस संग्रह (एक कदम आगे) में सज्जनित कहानियों में नयी पीढ़ियों के निर्माण में लगे इन बसाकारों के हृदयों में बैठे साहिर्यचार के दर्शन होते हैं। साथ ही शिक्षक समाज के जीवन दर्शन उनकी समस्याओं या कठिनाईयों का भी ज्ञान होता है और सामाजिक असमानता आयाय व रुढ़ियों के शिकार मध्यम तथा निम्न मध्यम परिवारों की मामूली जट्टोजहद का पता भी चलता है।

—नवभारत टाइम्स (नई दिल्ली), 30 दिस 79

सग्रहीत (सगभग जीवन) रचनाएँ मजिज की तसाज में निबले हुएों की वाली है, मजिज पर पहुँचे हुएों की नहीं, फिर भी 'साधारण' कहकर उनके महत्व की असमानना करना उचित नहीं होगा। परिवेश के प्रति प्रबुद्ध प्रतिद्रिया के नाते मकसन की विभिन्न रचनाओं की एक समान भूमि रही है जिसे सम्पादन ने 'समसामयिक इतिहास का बहुत गहरा दबाव' माना है। अभिनन्दनीय यह है कि इस दबाव का परिणाम रचनाओं की एक स्वरता के रूप में व्यक्त न होकर प्रत्येक कवि के अपने सज्जनात्मक उमेप में डल गया है।

—प्रकर (दिल्ली), अप्रैल, 80

जीवन यात्रा का कोलाहल न /? शिक्षा विभाग राजस्थान के लिए ही नहीं बल्कि समस्त शिक्षा जगत् के लिए अलम्प भेंट है। बोसाज सचमुच अलग अलग सैनवास पर रग दिरये चित्रों में उतारी गयी प्रबुद्ध सजना है।

—योजना (दिल्ली), 21 अप्रैल, 80



अमृता प्रीतम

जन्म : १९१९ ।

प्रकाशित कृतियाँ : पचास के लगभग ।

फ्रेञ्चो, रूसी, जापानी, चंक, चलगेरियन, उज्बेक, युगोस्लाव, भलबेनियन आदि विदेशी भाषाओं के अतिरिक्त, हिन्दी, उर्दू, मलयालम, तमिल, बन्नड, गुजराती, मराठी, बंगाली आदि भारतीय भाषाओं में अनेक रचनाएँ अमूर्तित ।

भारत सरकार द्वारा 'पद्म श्री' की उपाधि : १९६६ ।

दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा 'डी० लिट्०' की उपाधि . १९७३ ।

धाराशवाणी-सम्मान : १९७८ ।

चलगेरिया का 'बापत्सरोव एवाडें' . १९७६ ।

चलगेरिया का 'किरिता-भैतोदियस एवाडें' . १९८० ।